محرم نمبر ۱۴۳۰ھ

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰهُ تَبَارَكَ وَتَعَالىٰ قَدْ جَاءَكُمْ مِنَ اللّٰهِ نُورٌ وَكِتَابٌ مُبِينٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب



مؤسسۂ نور ہدایت حسینیہ غفران مآب لکھنؤ ۔۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2008-10
P.O. Chowk, Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

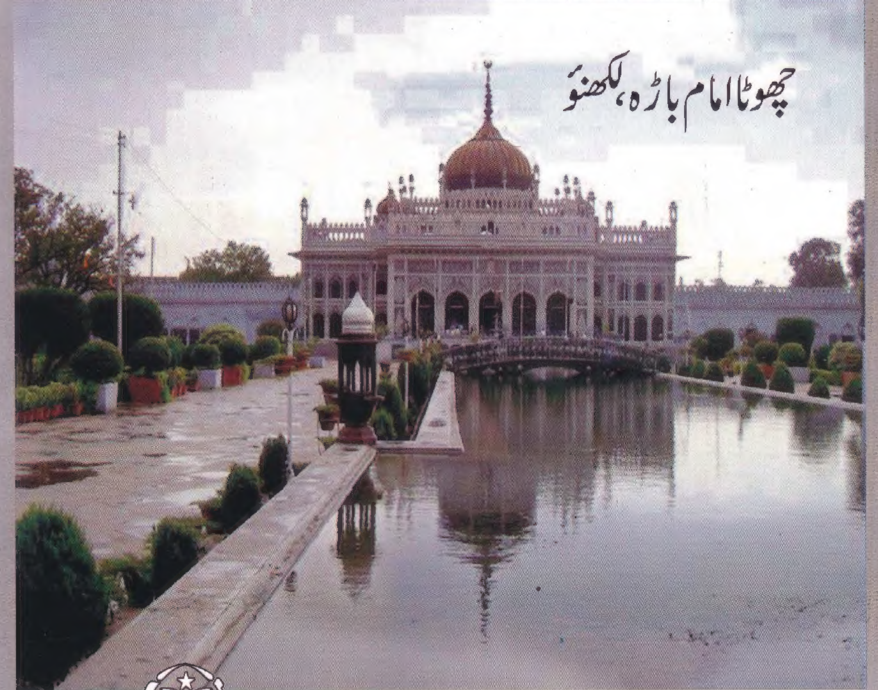
SHUA-E-AMAL

Lucknow

Dec. 08-Jan. 09

शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

Imambara Ghufran Maab, Chowk LUCKNOW-3 (U.P.) INDIA, Phone : 2252230

वर्ष-6

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postal Regd No-SSP/LW/NP-75/2008-10
P.O. Chowk. Dispatch Date: 2 & 6 of every month

अंक 6-7

दिसम्बर 2009 जनवरी 2010

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

शुआ-ए-अमल
"लखनऊ"

संरक्षक

मौलाना सै. कल्बे जवाद नक़वी साहब

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़' जायसी

वार्षिक - 200 रु

मिलने का पता

क़ीमत - 20 रु

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत ग़ुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड

चौक लखनऊ - 3 (उ.प्र.) भारत। फोन न० 0522-2252230

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ-ए-अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूर-ए-हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ-3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै० मुस्तफा हुसैन नक़वी 'असीफ जाएसी'।

▼▼▼

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526

▼▼▼

Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10

●●●

WEBSITE:
www.noorehidayat.com
www.al-ijtihaad.com

●●●

E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

ज़रे सालाना

1- यूरोप, अमरीका, कनाडाः
80 अमरीकी डालर

2- ख़लीजी मुमालिकः
60 अमरीकी डालर

3- एशिया, पाकिस्तानः
40 अमरीकी डालर

4- पाकिस्तान ज़मीनी डाकः
20 अमरीकी डालर

लाइफ़ मेम्बरशिपः 4000/-

मुहर्रम नम्बर

फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

दिसम्बर-2009ई० जनवरी-2010ई०

ज़िलहिज्जतुल हराम 1430हि० - मुहर्रमुल हराम 1431हि०

इन्सानियत का मुजस्समा

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह

वह ख़ुसूसियत जो किसी इन्सान को बलन्द इन्सानियत की चोटी पर पहुँचाने की ज़िम्मेदार हो सकती हैं, उनकी दो क़िस्में ठहरायी जा सकती हैं। एक भीतरी ख़ुसूसियत दूसरे बाहरी ख़ुसूसियत।

भीतरी ख़ुसूसियतों में इन्सान का हसब और नसब, किसी ख़ास ख़ानदान से ताल्लुक़ रखना, ख़ास बाप-दादा की नस्ल से होना, जो ख़ास गुणों और परम्पराओं को लिए हुए हों, ये एक इन्सान के कमाल की वजह होते हैं।

जाने दीजिये इस उसूल को, जिसे बहुत से लोग आज मान रहे हैं और वह गुण "तवारुसे सिफ़ात" है, यानी नफ़्सानी सिफ़ात भी बतौर विरासत औलाद की तरफ़ मुन्तक़िल होते हैं, और उसका तजुरबा इन्सान तो इन्सान, हैवानों तक में हुआ है, चुनानचे अदना क़िस्म के हैवान को, आला क़िस्म की तरफ़ मुन्तक़िल करने का ज़रिया ये है कि उस नस्ल के ताल्लुक़ाते इज़्देवाजी में तरक़्क़ी का लेहाज़ रखा जाए, अगर बराबर अच्छी नस्ल के अफ़राद इस सिलसिले में आते रहें तो धीरे-धीरे उसकी कमियाँ दूर होकर वह नस्ल आला क़िस्म की हो जायगी। इन्सान भी तबई ख़ुसूसियात के लेहाज़ से जब इस सिलसिले की एक कड़ी है, तो क्यों न इसमें भी ये उसूल दुरुस्त हो, फिर ये अख़लाक़ और औसाफ़े नफ़्सानी भी अक्सर ताब-ए-मिज़ाज होते हैं और ये तिब में भी साबित है कि मिज़ाजी ख़ुसूसियात औलाद की तरफ़ मुन्तक़िल होती हैं, ख़ैर जाने दीजिये इसको, फिर भी ये है कि इन्सान को लाज होती है अपने बाप दादा के तर्ज़, तरीक़े, उसूल और मसलक की, इसका नतीजा ये है कि अक्सर वह ग़लत बातों को छोड़ने पर तैयार नहीं होता, सिर्फ़ इस दलील से कि हमारे बाप-दादा इनके पाबन्द थे। फिर अगर बाप-दादा अच्छी ख़ूबियों वाले हों, तो औलाद को उन ख़ूबियों के साथ मुहब्बत ज़रूर होनी चाहिए, इसका भी नतीजा यही होता है कि एक इन्सान का किसी कामिल ख़ानदान, और बलन्द इन्सानी तबक़े में पैदा होना, उस इन्सान की बलन्दी की एक मुस्तक़िल वजह और सबब है।

बाहरी ख़ूबियों को हम तीन क़िस्मों में लिख सकते हैं।

1- **तालीम और तरबियतः** क्योंकि एक निचले तब्क़े का आदमी भी अगर अच्छी तालीम और तरबियत पा जाए तो कभी-कभी वह बलन्द हो जाता है।

2- **माहौलः** तालीम और तरबियत तो ज़्यादातर इन्सान की ज़िन्दगी के शुरुआती ज़माने से ताल्लुक़ रखती है, लेकिन माहौल ऐसी चीज़ है जो शुरु उम्र से आख़िर तक एक इन्सान के साथ रहता है, और उसकी ज़िन्दगी के हर हिस्से में असरअन्दाज़ होता है।

3- वह ज़माना और तजुरबे और हालात जिन्हें इन्सान ने देखा है, जिनका उससे वास्ता पड़ा है, और ज़िन्दगी के कई ज़मानों में उसे जिनसे गुज़रना पड़ा है, इस हैसियत से इन्सान का कमाल उस वक़्त ज़ाहिर होता है, जब इन्सान को एक-दूसरे के उलटे हालात का मुक़ाबला करना पड़ा हो, और उस वक़्त उसे अलग-अलग तरीक़े इख़्तियार करना पड़े हों। क्योंकि इन्सानी जज़्बात हमेशा एकतरफ़ा होते हैं। अगर एक शख़्स गुस्से वाला है, तो उसे हमेशा गुस्से की बात पर गुस्सा आ जायगा, और गुस्से में वह कुछ न कुछ कर गुज़रेगा। मुमकिन है कि उसका नतीजा कभी-कभी बहुत तारीफ़ करने वाला

हो, जैसे कोई मज़लूम उसे मदद के लिए पुकारे और ज़ालिम की ज़्यादती को देखकर उस शख़्स को गुस्सा आ जाए, उस वक़्त उसके हाथों मज़लूम की मदद होगी, मगर बहुत मुमकिन है कि कभी-कभी उसका गुस्सा ख़राब नतीजे भी पैदा करे, और उसके हाथों फ़ित्ना और फ़साद पैदा हो, और आलमी अम्न को सदमा पहुँचे, ये शख़्स ख़ुद हलाक हो और दूसरे को हलाक करने की वजह बने। ये सिर्फ़ इसलिए कि उसके इक़दामात सब गुस्से के मातहत होते हैं, इसलिए इसके नतीजों में दोरंगी नहीं पैदा हो सकती।

अब देखिये, एक दूसरा शख़्स है, जो फ़ितरतन हलीम और बर्दाश्त करने वाला है। उसका तरीक़ा अक्सर औक़ात में तारीफ़ वाला होता है। एक ऐसे मौक़े पर जब किसी दूसरे को गुस्सा आ जाए, ये ख़ामोशी इख़्तियार कर लेता है, और उसकी ख़ामोशी से एक बड़ा फ़ित्ना ख़त्म हो जाता है। क्या कहना उसकी इस बरमहल ख़ामोशी का! मगर याद रखिये कि ये ख़ामोशी कभी जुर्म बन जायेगी, उस वक़्त जब उस ख़ामोशी से ज़ालिम की हिम्मत बढ़ रही हो, और मज़लूमों का गला कट रहा हो। ये इन्सान अपनी ख़ामोशी से उस वक़्त तारीफ़ के बजाए, बुराई का हक़दार होगा। ये नतीजा है इसका कि उसकी ख़ामोशी तबीअत की कमज़ोरी, और सर्दी का नतीजा थी, इसलिए वह हर हाल में एक रहेगी, और उसमें बदलाव न पैदा होगा।

इन्सानियत का कमाल छुपा है, एक-दूसरे की ज़िद और नयेपन में वही इन्सान जो गुस्से के मौक़े पर बड़ा ही गुस्से वाला मालूम होता है, ख़ामोशी की जगह पर इस तरह ख़ामोश हो जायगा जैसे उसमें गुस्सा पैदा ही नहीं हुआ। ये होगा कामिल इन्सान।

सभी जुर्मों का सरचश्मा नफ़्स के जज़्बात हैं और जज़्बात तबियत के मेल का नतीजा होते हैं, जो एक तरफ से ही होंगे, मगर इन्सानियत नाम है, जज़्बात की मुख़ालेफ़त का, वहाँ जज़्बात, कुव्वते आक़िला के मातहत हो जाते हैं, मुमकिन है कि कभी अमल जज़्ब-ए-नफ़्स के मुताबिक़ हो, मगर वह सिर्फ़ इसलिए कि अक़्ल का फैसला भी उसी के हक़ में है और अगर मौक़े-महल की ज़रूरत इसके ख़िलाफ़ हो तो अमल बदला हुआ और अमल का तरीक़ा अलग-अलग नज़र आयेगा। इसका नाम होगा फ़र्ज़ शिनासी, और यही होगा इन्सानियत का जौहर, और इस जौहर में ज़िन्दगी पैदा होती है, या इसकी ख़ूबियों का इज़हार होता है उन मौक़ों से, जो किसी इन्सान को अलग-अलग शक्ल में पेश आये हों और फिर अलग-अलग तरीक़े से इख़्तियार करना पड़ें।

इस सूरत में उसके हकीमाना सोंच-विचार की बलन्दी, उसके तबई रुजहानात, और नफ़्सानी जज़्बात पर पूरे तौर से साबित होती है, और वह पता देती है इसका कि वह इन्सानियत के कमाल के किस दर्जे पर है।

मैं देखता हूँ तो कर्बला का इन्सान हुसैन[अ०] बिन अली[अ०] इन तमाम ख़ूबियों में बड़े बलन्द नुक़्ते पर नज़र आता है।

पहली वजह क्या थी?

ख़ानदानी ख़ुसूसियतें

हुसैन[अ०] की ख़ानदानी ख़ुसूसियतों का सिलसिला शुरु होता है, हज़रत इब्राहीम ख़लीले ख़ुदा[अ०] से। ये हस्ती बैनुलअक़्वामी हैसियत रखती है। यहूदी, ईसाई और मुसलमान, सब इनको मानते हैं और इस्लाम के सबसे बड़े मूरिस यही हज़रत इब्राहीम[अ०] हैं। इनके दो बेटे थे इस्हाक़[अ०] और इस्माईल[अ०]।

इस्माईल[अ०] की औलाद को ख़ुदा के घर के क़रीब होने की वजह से अरब में इम्तियाज़ी ख़ुसूसियत और मरकिज़यत हासिल हुई। इस्माईल[अ०] की औलाद में नज़्र बिन कनाना की औलाद, क़ुरैश के नाम से जानी गयी। क़ुरैश का इम्तियाज़ अरब के सभी क़बीलों में माना गया, और फिर क़ुरैश में बनी हाशिम को ख़ास ख़ुसूसियत हासिल हुई। बनी हाशिम पूरे क़ुरैश में दीनी और दुनियावी एतेबार से ख़ास अहमियत वाले माने गये, अब्दुल मुत्तलिब को सैय्यिदुल बतहा का लक़ब देकर गोया तमाम हेजाज़ वालों ने उनकी सरदारी और बलन्दी क़बूल कर ली, और उनके बाद उनकी औलाद में ये लक़ब बाक़ी रहा। ये सरदारी न सिर्फ़ दुनियावी मामलों

में थी बल्कि जो मुक़द्दस निशानियाँ थी, उनकी हिफ़ाज़त और हिमायत और ज़िम्मेदारी के सभी फ़राएज़ हाशिम की औलाद से जुड़े रहे, और इसके साथ ख़ुदा का दीन, ख़ुदा का हरम और अल्लाह की निशानियों पर जो कोई मुसीबत पड़ी तो सख़्त वक़्त में यही ख़ानदान काम आया। अब्दुल मुत्तलिब के दो बेटे थेः अब्दुल्लाह और अबूतालिब मगर अब्दुल्लाह का इन्तेक़ाल अब्दुल मुत्तलिब की ज़िन्दगी में हो गया, इस लिये जितनी ज़िम्मेदारियाँ अब्दुल मुत्तलिब से जुड़ी थीं उनकी वफ़ात के बाद अबूतालिब की तरफ़ चली गयीं, अब अबूतालिब इब्राहीम[अ०] की बरकतों के उठाने वाले और इस्माईल की विरासत के वारिस भी, हरम के मुतवल्ली और हिफ़ाज़त करने वाले थे और उस इब्राहीमी मिल्लत के वारिस थे, जिसका नाम था इस्लाम और जिसकी बुनियाद ख़लील[अ०] ने रखी थी।

अब्दुल्लाह के बेटे हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स०] थे जो इस्लाम के पैग़म्बर हैं, और आप भी शुरु उम्र से अबूतालिब की परवरिश में रहे, क्योंकि आपके वालिद का इन्तेक़ाल हो चुका था। अबूतालिब[अ०] ने इस ज़िम्मेदारी को जिस तरह पूरा किया है, वह दुनिया की तारीख़ में एक यादगार चीज़ है। उन्होंने अपनी औलाद को रसूले इस्लाम[स०] पर जान लुटाने का सबक़ दिया। उस वक़्त जब शेबे अबी तालिब में घिरे थे, तो इस डर से कि कहीं रात को रसूल[स०] क़त्ल न कर दिये जाएं, अबूतालिब[अ०] आपकी जगह पर अपने बेटों में से एक-एक को बारी-बारी सुला देते थे। और इस तरह जैसे सिखलाते थे कि रसूल[स०] पर कोई वक़्त पड़े इसी तरह जान लुटा देना।

क़ुदरत ने इस अब्दुल्लाह के यतीम और अबूतालिब[अ०] के पाले को ये इज़्ज़त दी कि उसको अपने दीन का लाने वाला बनाया, इस्लाम का कलमा उनकी ज़बान से पहुँचाया। इस पर दुनिया उनकी दुश्मन हो गयी, मगर रसूल[स०] ने इस सिलसिले में हर मुसीबत को बर्दाश्त किया, और इस्लाम की तबलीग़ करते रहे, यहाँ तक कि सब आपके ख़िलाफ़ हो गये, और क़त्ल पर एक हो गये। अबूतालिब[अ०] भी मर चुके थे, जो आपकी हिफ़ाज़त करने वाले थे, मजबूरी में आपको रात के वक़्त मक्का से अलग होना पड़ा, इस मौक़े पर अबूतालिब[अ०] के बेटे अली[अ०] ही की ज़ात थी, जिसे आपने दुश्मनों की तलवारों के घेरे में, अपने बिस्तर पर लिटा दिया था कि जांनिसारी आप बचपन में बाप के कहने से कर चुके थे, और उसे आपने उस यक़ीनी ख़तरे के मौक़े पर अमल करके दिखला दिया कहने दीजिये कि अली[अ०] ने इस ख़तरे में अपने आपको डालकर इस्लाम का फ़िदया बना दिया, ये और बात है कि ख़ुदा ने हिफ़ाज़त की और अली[अ०] की जान सलामत रही।

अल्लाह के रसूल[स०] को ख़ुदा ने एक बेटी दी थी, जिसका नाम फ़ातिमा ज़हरा[स०] था। रसूल[स०] ने अपनी हिजरत के बाद ही इस अपनी बेटी का निकाह अली बिन अबी तालिब[अ०] के साथ कर दिया। इन्हीं से दो बेटे हुए, एक का नाम था हसन[अ०] और दूसरे का नाम हुसैन[अ०]। अब क्या तुम अन्दाज़ा कर सकते हो कि हुसैन[अ०] की निगाह में अपने बाप-दादा की कितनी रिवायतें थीं और वह कौन सा इ़ज़्ज़त और शराफ़त का सिलसिला, सच्चाई और हक़्क़ानियत का सिलसिला, ईमान और रूहानियत का सिलसिला था जिसकी उस वक़्त आख़री कड़ी ये हुसैन[अ०] थे, क्या नसबी मेयार के लेहाज़ से इससे ज़्यादा बलन्दी की इन्सानी कमाल के लिए उम्मीद की जा सकती है?

दूसरी वजह

तालीम और तरबियत

हुसैन[अ०] की तरबियत रसूल[स०] ने की, जो दुनिया के लिए अख़लाक़ के मुअल्लिम थे और ये ज़ाहिर है कि आप पर सबसे पहला फ़र्ज़ अपनी औलाद की तरबियत का होता था। हुसैन[अ०] ने ख़ुल्क़े अज़ीम की आँखें देखीं, ख़ुल्क़े अज़ीम की गोद में रहे, ख़ुल्क़े अज़ीम के हाथों पर पले।

रसूल[स०] अपनी औलाद को उस इस्लाम की हिफ़ाज़त का ज़िम्मेदार बना रहे थे, कि जिसकी वह तालीम और तलक़ीन में लगे हुए थे। इसलिए उनकी तरबियत का ख़ास पहलू ये था कि वह बच्चों को इस्लाम के बारे में उनकी ज़िम्मेदारी का एहसास पैदा कराते रहें। इसके लिए अक़वाल भी थे, और अफ़आल भी थे। अक़वाल में, उनको क़ुरआन का साथ क़रार देना, ये

बताना कि ये कभी एक दूसरे से जुदा न होंगे, और आमाल में उस मौक़े पर कि जब ईसाईयों के साथ मुबाहला हो रहा था, उनको अपने साथ ले जाना। ये समझना, बिल्कुल ग़लत है कि रसूल[स॰] की दुआ आमीन की मुहताज थी, मगर एक तरफ तो आप दुनिया को बतला रहे थे कि देखो, अगर हक़ और बातिल का मुक़ाबला हो, तो ख़ालिस हक़ के मुजस्समे ये हैं। दूसरी तरफ़ उनको एहसास पैदा करा रहे थे, कि देखो अगर इस्लाम पर कोई वक़्त पड़े, तो मुझे तुम ही से उम्मीद है। इस वक़्त मैं मौजूद हूँ, मैं ख़ुद तुम्हें ले जा रहा हूँ, और किसी वक़्त मैं मौजूद न हूँगा तो तुम ख़ुद उठ खड़े होना। हुसैन[अ॰] के गोश्त और ख़ून को, अपना गोश्त और ख़ून कहा था। इसके माने ये भी हो सकते हैं कि ऐ हुसैन अगर इस्लाम पर कोई वक़्त पड़े तो इस गोश्त को अपना गोश्त और इस ख़ून को अपना ख़ून न समझना। इसे मेरे इस्लाम पर क़ुर्बान कर देना।

ये थी वह तरबियत जो हुसैन[अ॰] को हासिल हुई थी।

तीसरी वजह

माहौल

क्या पूछना हुसैन[अ॰] के माहौल का। वहि की सदा क़ुरआन की आवाज़ और रसूल[स॰] के जेहाद और अली[अ॰] के मुजाहिदाना कारनामे।

ये है बचपना। जवानी में बाप को ख़ाना नशीन ज़रूर देखा, मगर ये बराबर नज़र आया कि जब इस्लाम के लिए कोई सख़्त मौक़ा हुआ, कोई अहम मसअला सामने आया, कोई ख़ास मशवरा, फौरन इस्लाम के फ़ायदे के लिए फ़ायदा पहुँचाने को तैयार हो गये। ज़ाती अग़राज़, चाहत नामो नमूद, ज़माने की बेइल्तिफ़ाती का कभी इस मामले में ख़याल न किया। हाथ में तलवार, बाज़ुओं में ताक़त होते हुए, कभी तलवार आज़माने का इरादा न किया, हुक़ूक़ मिटते हुए देखे ख़ामोशी इख़्तियार की, इसलिए कि इस्लाम को नुक़सान न पहुँचे। जब मुसलमानों ने ख़ुद से आकर इक़्तेदार की पेशकश की, और आपको उसे मानना पड़ा, तो देखा कि हक़्क़ानियत की हिफ़ाज़त के लिए और बातिल की हिमायत से अलग रहने के लिए और इस्लामी आईन और उसूल को बाक़ी रखने के लिए, अली[अ॰] ने हाकिमे शाम से ज़रा भी नज़र नहीं हटायी, रवादारी, और आसानी को जाएज़ नहीं समझा, हज़ारों मुसीबतें बर्दाश्त कीं, मगर एक मिनट के लिए इसको क़ुबूल नहीं किया कि आप मुआविया की हुकूमत को शाम पर मन्ज़ूर कर लें।

ग़रज़ ये माहौल था, जिसमें हुसैन[अ॰] ने ज़िन्दगी के दिन गुज़ारे, हमेशा यही रहा कि उठते बैठते, चलते फिरते, हर बात में इस्लाम का फ़ायदा सामने रखो। हक़ अपना बर्बाद हो कुछ न बोलो, इस्लाम के लिए दुनिया अलग हो जाए, और दूसरे बेजा इक़्तेदार क़ायम कर लें, ख़ामोश रहो, इस्लाम के लिए राहत और आराम में परेशान हो, मगर ये सब इख़्तियार कर लो, इस्लाम के लिए। इस माहौल का क़तई नतीजा ये था कि जान भी जा रही हो, औलाद भी काम आ रही हो, मालो अस्बाब भी लुट रहा हो, तो इस सब को बर्दाश्त कर लो इस्लाम के लिए।

चौथी वजह

<u>वाक़ेआत व तर्जुबात और अलग-अलग हालात में अलग-अलग तरीक़े इख़्तियार करने के मौक़े:</u> इस हैसियत से हुसैन[अ॰] को जितने मुख़्तलिफ़ ज़मानों से गुज़रना पड़ा, किसी और को न गुज़रना पड़ा होगा।

सात साल की उम्र हुसैन[अ॰] ने अपने नाना रसूल[स॰] की ज़िन्दगी में गुज़ारी। ये बचपना था, जो बचपने ही के लायक़ राहत आराम दिलजोई और ख़ातिरदारी में गुज़रा। इसके बाद आया अली[अ॰] बिन अबी तालिब का ज़माना। हुसैन[अ॰] ने देखा, समझा और महसूस किया कि ज़माना बदल गया, डयोढ़ी की रौनक़ सन्नाटे से बदल गयी, जो हर वक़्त के आने जाने वाले लोग थे, अब दूर-दूर तक नज़र नहीं आते, ये भी सुना कि मेरे बाप जिस हक़ को अपना हक़ समझते हैं, उस हक़ पर दूसरों का क़ब्ज़ा है, इस मौक़े पर बच्चों और नौजवानों के जज़्बात अजीब मौजें मारते हैं, फिर हुसैन[अ॰] उसी ज़माने में भरपूर जवान हुए, और चौंतीस साल की उम्र तक पहुँचे, क्या कोई कह सकता है कि ये ज़माना

सब्र व सुकून आफ़ियत अन्देशी और अन्जाम बीनी का होता है, और क्या इन्सानी जोश और वलवला इस मौक़े पर मसालेह की बन्दिश आसानी से गवारा कर सकता है, मगर हुसैन[अ०] को बाप के इख़्तियार किये हुए तरीक़े की पाबन्दी लाज़मी थी। कोई नहीं कह सकता कि उस ज़माने में कोई काम उन्होंने नज़्मो ज़ब्त के ख़िलाफ़ किया हो।

बल्कि उस वक़्त जब तीसरे दौर में ख़लीफ़-ए-वक़्त घिरे हुए थे, और हमला करने वालों ने पानी बन्द कर दिया था, तो हसन[अ०] और हुसैन[अ०] को अली बिन अबी तालिब[अ०] ने पानी पहुँचाने पर लगाया था और कह दिया था कि अगर इस सिलसिले में जंग भी करना पड़े तो कर लेना। बाप के हुक्म की इताअत थी कि हुसैन पानी लेकर गये और पूरी क़ुव्वत से काम लेकर पानी पहुँचा दिया, क्या आम तबई जज़्बात और रुजहानात का तक़ाज़ा यही होता है?

तीसरा दौर वह आया, जब हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०] ख़िलाफ़त की गद्दी पर बैठे, अब बग़ावतें शुरु हो गयीं और अली बिन अबी तालिब[अ०] को जंग करना पड़ी।

इस सिलसिले में जंगे जमल हुई और सिफ़्फ़ीन और नहरवान, उस वक़्त हुसैन[अ०] जंग के मैदान में तलवार लेकर अपने बाप की मदद में जेहाद में लग गये।

हुसैन[अ०] की उम्र पैंतीस-छत्तीस साल की है, और बेशक इस उम्र का जोश जेहाद को चाहता है, मगर सिफ़्फ़ीन में क़ुरआन नेज़ों पर बलन्द होते हैं, अलवी फ़ौज में इख़्तेलाफ़ हो जाता है, और अली बिन अबी तालिब[अ०] मौक़े को देखते हुए जंग टालने का हुक्म देते हैं। लीजिये हुसैन[अ०] की तलवार भी न्याम में चली जाती है। क्या जवानी की उम्र का जोश आसानी से जंग से हटने पर तैयार होने दे सकता है, एक ऐसे मौक़े पर जबकि जीत बिल्कुल सामने थी, और मालिक अशतर की बहादुरी का जज़्बा, बेचैनी के साथ करवटें बदल रहा था, मगर यहाँ जज़्बात से तो काम न था, फ़र्ज़ का एहसास, हुसैन[अ०] के सर को झुका देता है। मालूम होता है, अब तलवार में बाढ़ ही नहीं। यहाँ तक कि जंग टालने के मुआहदे पर हसन[अ०] और हुसैन[अ०] दोनों गवाह की हैसियत से दस्तख़त करते हैं। उसके बाद अमीरुलमोमिनीन[अ०] शहीद होते हैं, इमाम हसन[अ०] जानशीन हुए और अपने बाप के दुश्मन मुआविया से जंग पर तैयार हुए। हुसैन[अ०] भी भाई के साथ जेहाद पर तैयार हैं। हालात ऐसा पलटा खाते हैं कि इमाम हसन[अ०] को मुआविया के साथ सुलह की ज़रूरत महसूस होती है। याद रखिये कि ये मौक़ा दूसरा है, बाप की सी बरतरी भाई को आम इन्सानों की निगाह में हासिल नहीं, मगर हुसैन[अ०] तो अपने भाई को पेश्वा माने हुए थे, हुसैन[अ०] उसी रास्ते पर हैं जो हसन[अ०] का रास्ता है हालांकि साथियों में शोरिश है, वह चाहते हैं कि किसी तरह हुसैन[अ०] जंग पर तैयार हो जाएं।

मगर वह फ़र्ज़ शिनास इन्सान कहता है कि हम ने सुलह कर ली और हम इसके पाबन्द हैं। दस साल हसन[अ०] की ज़िन्दगी में गुज़ारे जाते हैं, दस साल हसन[अ०] के बाद गुज़ारे जाते हैं और वही ख़ामोशी का तरीक़ा क़ायम रहता है। वह हुसैन[अ०] जिसने इसके बाद कर्बला में दिखला दिया कि उसके सीने में कौन सा दिल, और पहलू में कौन सा जिगर है वह इस लम्बे ज़माने में हज़ारों नापसन्द वाक़ेआत के बाद भी ख़ामोश रहता है जैसे उसके सीने में दिल और दिल में हौसला पैदा ही नहीं हुआ।

क्या कम है ये बात कि हसन[अ०] को ज़हर दे दिया जाए, क्या कम है ये बात कि हसन[अ०] को रौज़ा-ए-रसूल में दफ़न न होने दिया जाए, क्या कम है कि हसन[अ०] के जनाज़े पर तीर चलाये जाएं, मगर हुसैन[अ०] इन तमाम बातों पर ख़ामोश रहें। तलवार न्याम से न निकालें, क्या इससे बढ़कर जज़्बात पर क़ाबू की कोई मिसाल हो सकती है?

लीजिये वह वक़्त आ गया कि यज़ीद तालिबे बैअत हुआ। अब वही ख़ामोश इन्सान ये कहता है कि बैअत तो मैं नहीं करूँगा। ये हुसैन[अ०] नहीं कह रहे थे, हुसैन[अ०] के ख़ानदानी ख़ुसूसियात, हुसैन[अ०] की तालीम व तरबियत, हुसैन[अ०] का माहौल, और हुसैन[अ०] का ज़मीर सब एक होकर आवाज़ दे रहे थे कि यज़ीद से बैअत तो न होगी, क्योंकि इस बैअत से इस्लाम ख़त्म हो

जाएगा, इस्लामी शरीअत भुला दी जाएगी और इस्लामी क़ानून में बदलाव हो जाएगा।

कहा "बैअत नहीं करूँगा" और वतन छोड़ दिया, मक्का बसाया। वहाँ सताये गये, उसे छोड़कर निकल खड़े हुए, इराक़ की तरफ चले। फ़ौज आ गयी, रोक लिया, कर्बला में उतर पड़े। चाहते हैं ख़ेमे फ़ुरात पर लगाये जाएं, मुख़ालिफ़ फ़ौज, वही फौज जिसे हुसैन[अ०] अभी पानी पिला चुके थे, वह हुसैन[अ०] का पानी के पास रहना गवारा नहीं करती।

"हमें अमीर का हुक्म है कि आपके ख़ेमे रेती पर लगाये जाएंगे।" अस्हाब बिगड़ते हैं, चाहते हैं कि इस बात पर लड़ें। "नहीं, नहीं, लड़ो नहीं, हम ख़ेमे यहाँ से हटाये लेते हैं, रेती पर ख़ेमे लगा दो।" फ़ौजें आने लगीं दुश्मन ने घेर लिया।

हुसैन[अ०] अम्न व सुलह की कोशिश शुरु करते हैं। अनजान लोग समझते होंगे कि ये दिल की कमज़ोरी का नतीजा है, आज तक यही समझते, अगर आशूर का दिन न आता, और हुसैन[अ०] कर्बला के ज़र्रे-ज़र्रे को अपनी बहादरी, इस्तेक़लाल और बर्दाश्त का गवाह न बना देते।

सुलह की गुफ़्तगू कामयाबी के क़रीब पहुँचती है, मगर इब्ने ज़ियाद उसे ख़त्म कर देता है, "या बैअत या क़त्ल" और हुसैन[अ०] बैअत को पहले ही कह चुके थे, कि नहीं वह अगर जज़्बात की बुनियाद पर फैसला होता, तो शायद अब डर के जज़्बे से बदल जाता, नहीं तो वह हुसैन[अ०] के ज़मीर का फ़ैसला था और दिल व दिमाग़ का समझोता था। इसमें बदलाव की गुन्जाइश न थी।

अब तो बस एक ही सूरत है हुसैन[अ०] का क़त्ल। साथियों से कहते हैं: "चले जाओ, मैं अकेला इस मुहिम को झेल लूँगा।" साथी कहते हैं, "नहीं, हम साथ नहीं छोड़ेंगे।"

"अच्छा तो फिर आओ"

आशूर की सुब्ह, अब तो एक मरने वाले को इन्तिज़ार की ज़रूरत नहीं, मगर वहाँ तो फ़राएज को पूरा किया जा रहा था।

कहीं दुश्मन की जमाअत में कोई अन्जान न हो, कोई हिदायत का प्यासा न हो।

लीजिये हुसैन[अ०] ने दलील भी पूरी कर ली, वह तक़रीर जिसमें अपनी सफ़ाई की दलीलें पेश की थीं, हाँ-हाँ हुसैन की तक़रीर बे असर न थी, हुर समझा और हुसैन की तरफ़ आ गया।

दुश्मन ने तीरों की बौछार करके जंग का एलान भी कर दिया। हुसैन[अ०] क़ुर्बानी के मैदान में हैं। मगर अपनी जान की क़ुर्बानी तो कोई बात न थी, अपने से जुड़े हर फ़र्द को क़ुर्बान कर दिया।

एक भी जब तक बाक़ी रहा, हुसैन[अ०] ने जेहाद का इरादा नहीं किया। मालूम होता है, अब भी नफ़्स का सुकून ख़त्म नहीं हुआ है। अमल के मरहले हैं जो तरतीब के साथ तै हो रहे हैं, कोई घबराहट का क़दम, और बेचैनी का अमल नहीं है। लीजिये, कोई नहीं रहा। वह जो बीस साल तक ख़ामोश रहा, वह जो नौ दिनों तक सुल्ह की नर्म शर्तें पेश करता रहा, वह जो सुब्ह से अब तक दोस्तों और अज़ीज़ों को क़त्ल होते हुए देखता रहा, और तलवार न्याम से न निकाली, अब जब कि कोई नहीं रहा है, जबकि कमर भी टूट चुकी है, आँखों का नूर भी रुख़सत हो चुका है, बेकसी, बेबसी तीन दिन की प्यास और सुबह से इस वक़्त तक की धूप की तेज़ी को बर्दाश्त किये हुए, अब वह जेहाद पर तैयार होता है। वह ख़ामोशी के साथ अपने को दुश्मन के हवाले नहीं कर देता, क्योंकि ये इस्लाम की तालीम के ख़िलाफ़ है। उसे अपनी हिफ़ाज़त के लिए, बचाव करने के लिए जेहाद फ़र्ज़ है, वह तलवार न्याम से खींचता है।

इतनी जंग करता है, जिसे तारीख़ ने खुले अलफ़ाज़ में लिखना ज़रूरी समझा है। आख़िर को क़ुर्बानी पूरी हो जाती है, हुसैन[अ०] दुनिया से चले जाते हैं, मगर उनकी अज़ीम इन्सानियत आज तक आलमे इमकान से कलमा पढ़वाये बिना नहीं रह सकती।

ये था वह इन्सानियत का मुजस्समा जिसकी मिसाल दुनिया की तारीख़ में मिलना मुश्किल है।



कर्बला से हमें क्या सबक़ मिलता है...क़ुर्बानी का?

अल्लामा सै० मुहम्मद रज़ी साहब क़िब्ला, कराची

दुनिया की तारीख़ (History) गवाह है कि हमेशा बदी की ताक़तें उभरती रहीं और इन्सानियत के मिलेजुले फ़ायदे को तबाह व बर्बाद करती रहीं। जब हम लूटमार, ज़ुल्म और सितम और लालच के उन वाक़िओं को देखते हैं, जिनमें सिर्फ़ निजी फ़ायदे के चेहरे पर इन्सानी कामयाबी और जनता के हक़ूक़ की हिफ़ाज़त की नक़ाब डाल कर समाजी गुनाहों को किया गया तो हैरत, ग़म और ग़ुस्से के एक गहरे समन्दर में हम डूबने लगते हैं और ये सोचने लगते हैं कि ज़ोर ज़बरदस्ती और ज़ुल्म और सितम के इन हौलाते तूफ़ानों में इन्सानी ज़िन्दगी क्योंकर अब तक बाक़ी रह सकी और किस तरह ये दुनिया इस वक़्त तक इस क़ाबिल रह गई कि इसमें रहना और जीना मुमकिन है। साथ ही हमारी ये हैरत और परेशानी उस वक़्त बिल्कुल ख़त्म हो जाती है जब हम ये भी देखते हैं कि ऐसे तमाम मौक़ों पर कुछ महान तारीख़ी शख़्सियतें सामने आती हैं और इनमें ग़ैरमामूली गहरी सूझबूझ, पक्के इरादे और काम की क़ुव्वत मौजूद होती है और वह बुराई और गुमराही के तबाही भरे तूफ़ानों और ज़ुल्म और सितम के धारे का रुख़ मोड़ दिया करती हैं और सिसकती हुई इन्सानियत में एक नई रूह फूँक देती हैं।

इन सभी महान शख़्सियतों में जिन्होंने समाजी फ़ायदे की बेहतरी और इन्सानियत की भलाई के लिए काम किया और बदी की दबदबे वाली ताक़तों का मुक़ाबला किया और फिर अपने मक़सद में जीत पायी, ये बात उन सब में एक सी है कि इनमें हर शख़्सियत ने अपने ज़ाती फ़ायदे और निजी सुख आराम को जनता की भलाई और इन्सानी नस्ल के बुनियादी मक़सद और उसके रास्ता दिखाने और कामयाबी के लिए क़ुर्बान कर दिया था। इस महान मक़सद को हासिल करने के लिए उन्होंने जान, माल, और अपनी ज़ात के हर उस फ़ायदे की क़ुर्बानी पेश की जिसका पेश करना उनके लिए मुमकिन था। वह डर और लालच के मुक़ाबले में मज़बूत चटानों की तरह खड़े रहे उन्होंने अपने पक्के इरादे और सच्चाई की बेपनाह ताक़त से और ग़ैबी रहनुमाई के सहारे से कमज़ोर इन्सानों की मदद की और ज़मीर (अन्तःकरण/Conscience) की आज़ादी का वह हक़ जो उनसे ज़बरदस्ती छीन लिया गया था, उन्हें वापस दिलवाया और गुमराह जानों को हर मुमकिन सूरत से रास्ता दिखाया और ये सब इस वजह से कि ख़ुदा ने ये नहीं चाहा कि ये दुनिया एक बदतरीन जगह बन जाए या ये कि इन्सानी नस्ल ऐश की दासी और वह्शी दरिन्दों की नस्ल बन कर रह जाए। ये महान शख़्सियतें इस सच्चाई पर यक़ीन रखती थीं कि इस दुनिया में इन्सान सिर्फ़ मौज मस्ती और खाने पीने के लिए नहीं पैदा हुआ है बल्कि ऊँचे मक़सदों और क़ीमती विचारों की सेवा करना और उनके लिए हर मुमकिन क़ुर्बानी पेश करना उसका सबसे बड़ा फ़र्ज़ है। अगर ऐसे इरादे के पक्के और सच्चे इन्सान न पैदा होते तो यक़ीनन आज भी इन्सानी ज़िन्दगी हूश और जंगली क़ानून की ज़ंजीरों में एक कमज़ोर क़ैदी की हैसियत में होती और इन्सान के ज़मीर की आज़ादी और अपने निजी और समाजी जाएज़

हक़ की तलब को सोच भी नहीं सकता और पूरी दुनिया एक ऐसा जहन्नम बन कर रह जाती जहाँ समाजी और अख़लाक़ी (Moral) उसूल जंगलीपन के शोलों में जलते रहते।

ऊँचे मक़सद और इन्सानी कामयाबी के पाक काम के लिए जिन तारीख़ी शख़सियतों ने कुर्बानियाँ पेश करके इन्सान को नजात दी, उनमें महान शहीद (सैय्यिदुश्शोहदा हज़रत इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम) की ज़ात ऐसी मंज़िल पर है जहाँ कुर्बानी और त्याग, ख़िदमत और ईमानदारी के जज़्बे की वह मिसाल बनी जिसकी जैसी पेश करने से तारीख़ के पन्ने बेबस हैं। किसी तारीख़ी शख़सियत की बड़ाई को समझने के लिए हमें इस बात को भी समझना पड़ेगा कि इस मक़सद की हैसियत क्या थी जिसके लिए उसने कुर्बानियाँ पेश कीं और जान, माल और औलाद की बाज़ी लगाई और साथ ही ये कि उसके इस किरदार के नैतिक रुख़ क्या थे। इन बातों को पूरी तरह समझ लेने के बाद हमारी निगाहों में उस शख़सियत की सही बड़ाई समा सकती है और हम उसके असली मक़ाम को जान सकते हैं, वरना नहीं। इस बुन्याद पर अगर हम इमाम हुसैन[अ०] की इस कुर्बानी के नैतिक पहलू और सही मक़ासिद को न समझें तो फिर इस कुर्बानी की इज़्ज़त हमारे सामने दो बादशाहों और दो फौजों की जंग से ज़्यादा नहीं हो सकती। इसलिए हमें पूरी ईमानदारी और सच्चाई से इस हक़ीक़त पर ध्यान करना होगा कि इमाम[अ०] की इस कुर्बानी का सही मक़सद क्या था और इसके नैतिक और इस्लामी पहलू क्या थे। आपने सिर्फ़ अपनी ही जान व माल की कुर्बानी नहीं पेश फ़रमाई बल्कि अपनी औलाद, अपने चाहने वालों, अपने साथियों यहाँ तक कि छः माह के बच्चे हज़रत अली असग़र को भी कर्बला के मैदान में हक़ की आवाज़ को ऊँचा करने और इस्लाम को बचाने के रास्ते में कुर्बान कर दिया, इस बहादुरी और हिम्मत के साथ जो पहले की तरह आज और अब भी अपनी आप ही मिसाल है। इतनी अहम कुर्बानी और ऐसी बड़ी सेवा किस मक़सद के लिए हो सकती है, जबकि आपके लिए बहुत ही आसान बात थी कि आप यज़ीद के हाथ पर बैअत कर लेते (उसके राज को मान लेते) और हर तरह के दुनियावी ऐश आराम को हासिल करने में कामयाब हो जाते मगर आप ने अपने वतन को छोड़ा, ख़ानदान से अलग हुए, रसूल[स०] की पाक क़ब्र से दूरी को गवारा किया और मन व शरीर के हर तरह ज़हनी और जिस्मानी चैन व आराम छोड़कर ख़ून की बारिश और मौत की गरज के सामने औरतों, बच्चों, साथियों, अज़ीज़ों और एक बहुत ही छोटे दल के साथ आ गए, ये ऊँचा मक़सद और बड़ी ग़रज़ सिर्फ़ यही थी कि उस वक़्त आप उसको अपना फ़र्ज़ समझ रहे थे कि इस्लाम की ईमानदारी और सच्चाई की सही सेवा सिर्फ़ यही है कि आप कर्बला की कुर्बानगाह (बेदी) पर अपनी सारी अनमोल कुर्बानियाँ पेश फ़रमा दे और इस्लाम की हिफ़ाज़त के लिए उस नापाक और बेदीन शासक से एक फैसलाकुन और आख़री जंग करें, वह शासक जो न सिर्फ़ मुसलमानों के ख़लीफ़ा बन जाने की धमकी दे रहा था बल्कि जिसे मुसलमानों का नेता होने का दावा भी था और ईमानदारी के चेहरे पर अपनी नापाक समाजी और सियासी उसूल की नक़ाब डालकर इस्लाम और उसकी रूहानियत को हमेशा के लिए ज़मीन में गाड़ देना चाहता था। 'इस्लाम और ईमानदारी के लिए जंग' का मतलब सिर्फ़ ये था कि इमाम हुसैन[अ०] ने इन्सानियत की भलाई और उसकी सही अगवाई के लिए जंग की थी और उसी ऊँचे मक़सद के लिए कुर्बानियाँ पेश फ़रमायीं। ये कोई सिमटा-घिरा और पार्टी मक़सद न था जो किसी ख़ास ख़ानदान या किसी ख़ास ज़मीन के हिस्से से जुड़ा था, बल्कि ये उसूल की जंग थी, हक़ और बातिल, सत्य और असत्य की लड़ाई थी, ईमानदारी और बेदीनी की जंग थी। ऐसी लड़ाइयाँ जब भी लड़ी गईं तो उनमें जीत और हार की कसौटी वह न था जिसको आम जनता हार और जीत समझते हैं। इन लड़ाईयों में नतीजों और मक़सदों की ऊँचाई और सच्चाई के लेहाज़ से जीत और हार के उसूल बनाए जाते हैं और फिर ये देखा जाता है कि जिस मक़सद के लिए दो गुट आपस में भिड़े हुए थे उसके पाने में कौन सा गुट कामयाब रहा। ये एक मानी हुई सच्चाई है कि अत्याचारी ताक़तों की भूख इतनी बीहड़ हुआ करती है कि वह सारी बुराईयों से अपना

पेट भरती है। यज़ीद भी ज़ुल्म और सितम की पूरी नुमाइन्दगी कर रहा था उसे माद्दी (Material) मूल्यों के पाने में शुरुआती कामयाबियाँ मिल चुकी थीं, उसने सत्ता हड़प ली था, और रिश्वत, नाजाएज़ दबाव, ज़ुल्म और मक्कारी से उसने लोगों से बैअत ले ली थी (अपना राज मनवा लिया था) सिवाए कुछ लोगों के जो इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम के साथ थे। ज़ुल्म और सत्ता की न ख़त्म होने वाली भूख ही तो थी जिसकी वजह से उसने अब रसूल[स०] के नवासे के सामने भी बैअत का मसला पेश किया जिसका मतलब साफ था कि आप उसकी सरदारी और सत्ता को दुनियावी और दीनी हैसियतों से मान लें, जिसका नतीजा सिर्फ़ ये था कि इमाम हुसैन[अ०] उन सभी नैतिक और इस्लामी मूल्यों और सारे दीनी ध्यान और हक़ीक़तों को छोड़ दें, जिनके वह अमानतदार थे और जो उन्हें अपनी जान से ज़्यादा अज़ीज़ थीं और इसका दूसरा रुख़ भी बिल्कुल साफ़ था कि अगर ये बात न हो सके तो फिर आप हर उस मुसीबत और आफ़त को झेलें जो मुमकिन हो सकती है। महान इमाम अपने धर्म फ़र्ज़ को पूरी तरह पहचानते थे, वह इस्लाम के उसूल और उसकी सच्चाई के अमानतदार थे, वह इस दौर में इस्लाम की इज़्ज़त की हिफ़ाज़त इस्लाम के लिए रसूल[स०] के नवासे और इमाम होने की हैसियत से सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार थे। इसलिए उन्होंने इस बैअत की माँग को ठुकरा दिया, मन की आवाज़ और फ़र्ज़ के एहसास की कड़ाई उनके पक्के इरादे की बुनयाद थी और उन सभी डरावने नतीजों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा ताक़तवर थी जो हार के बाद दुश्मन दरिन्दों के हाथों जंग के मैदान में बर्दाश्त करना पड़ते हैं। आपने इन्सान जाति को अपनी इस महान क़ुर्बानी से ये बात पूरी तरह समझा दी है कि अपना ज़ाती फ़ायदा, और अज़ीज़ों और दोस्तों या अपनी औलाद और रिश्तेदारों के हित और उनका आराम और राहत, इनमें से कोई चीज़ भी सच्चे उसूल और पाक विचारों के बचाव के मक़सद के सामने किसी तरह का भी मोल नहीं रखती। क्या हिंसा और ज़ुल्म के हाथों में ज़ंजीरें डालने के लिए इमाम हुसैन[अ०] की क़ुर्बानी से ज़्यादा अहम कोई मिसाल मुमकिन हो सकती है? इसका जवाब बिल्कुल साफ़ है कि हरगिज़ नहीं। इस क़ुर्बानी ने बता दिया कि बुराई का मुक़ाबला हर क़ीमत पर किस तरह किया जा सकता है और कुछ लोग टिड्डी दल फ़ौजों के मुक़ाबले में किस तरह ईमानदारी और हक़ की हिमायत (सत्य का साथ) का फ़र्ज़ पूरा कर सकते हैं।



बक़िया ..... अमर शहीदों के सरदार इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम

सच हैं और क़यामत के दिन ख़ुदा सबको उठायेगा। उस आने वाली घड़ी में कोई शक नहीं। बातिल के मुक़ाबिल में खड़े होने का मेरा मक़सद मौज मस्ती नहीं है बल्कि मेरा मक़सद उम्मत का सुधार और अपने नाना के समाज को भटकने से बचाना है। मैं चाहता हूँ कि "अच्छाइयों" का हुक्म करूँ और "बुराइयों" से बचाए रखूँ, मैं अपने नाना (हज़रत मुहम्मद[स०]) और अपने पिताश्री (अली[अ०]) के चलन से बंधा हुआ हूँ। इसलिए जो मेरे मक़सद को सच समझ कर मुझे मानें और मेरा साथ दे, तो ख़ुदा उसे सच में वरदान देगा (वह सआदत पाएगा) और जो मुझे ठुकराएगा तो मैं सहन करूँगा यहाँ तक कि ख़ुदा मेरे और लोगों के बीच फ़ैसला करे और वह बेहतरीन फैसला करने वाला है।"



हुसैन अ० और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध

अल्लामा 'नज्म' आफ़न्दी साहब क़िब्ला

तेरह सौ वर्ष की बात है, अरब देश और कर्बला के रेतीले मैदान में फ़ुरात की नहर के किनारे एक लड़ाई हुई थी, जिसमें एक तरफ बहत्तर संत, सच्चाई के तरफ़दार, जनता का दुख दर्द रखने वाले, भलाई के पालनहार, बुराई से दूर रहने वाले, अच्छे कर्मों के उपदेशक हुसैन, और उनके मुसाफ़िर साथी थे। दूसरी तरफ उस समय के बादशाह यज़ीद की सेना के कम से कम 30,000 आदमी थे जो हुसैन[अ०] और उनके साथियों को इस कारण क़त्ल करने के लिए भेजे गए थे कि हुसैन ने उस पापी हुकूमत को मानने से इनकार कर दिया था जो ज़बान से कहने के लिये मुसलमानों की हुकूमत थी लेकिन उसका चलन मुसलमानों के पैग़म्बर[स०] (हुसैन[अ०] के नाना) के बताये हुए और सिखाए हुए तरीक़ों से बिल्कुल अलग था। ग़रीब आदमी तलवार की हुकूमत और माया की ताक़त चक्की के दो पाटों के बीच में बहुत बुरी तरह पिस रहे थे। अन्याय और अपराध के सिवा न्याय और दया धर्म का कहीं नाम न था।

हुसैन[अ०] ग़रीब जनता की दुख-दर्द से भरी चीख़ पुकार सुनकर इनके बार-बार के बुलावे से मजबूर होकर घर से निकले थे और गर्मी और धूप में कई महीनों का सफ़र करके कर्बला तक पहुँचे थे और फ़ुरात के किनारे डेरे डाल रहे थे कि यज़ीद के लशकर ने आकर चारो तरफ़ से घेर लिया और उन्हें नदी के किनारे उतरने से रोक दिया। हुसैन[अ०] लड़ाई लड़ना और ख़ून बहाना नहीं चाहते थे। उन्होंने नदी से दूर हटकर जलती हुई रेत पर अपने ख़ेमे लगा लिये। हुसैन[अ०] के साथ औरतें और छोटे बच्चे भी थे जिनके कारण हुसैन[अ०] के सूरमा साथी लड़ने के लिए आमादा हो गए थे लेकिन हुसैन[अ०] ने उनको समझा बुझाकर बाज़ रखा वरना जो लड़ाई छः सात दिन के बाद हुई वह उसी वक़्त पानी के लिए शुरु हो जाती। इस छः सात दिन के अन्दर यज़ीदी लश्कर के सेनापति और हुसैन[अ०] से कई बार बातचीत हुई मगर कोई समझोता न हो सका। यज़ीद का संदेश यह था कि हुसैन यज़ीद की हुकूमत को मान लें, जनता की चीख़ पुकार पर कान न धरें। जो अपराध हो रहा है, उसको होने दें, तब उनकी जान बच सकती है। अगर हुसैन[अ०] अपनी और आपने साथियों की जान बचाने के लिए इस पर राज़ी हो जाते तो हुसैन[अ०] के नाना मुसलमानों के रसूल[स०] ने अपनी सारी उम्र जो भलाई का प्रचार किया था, आदमी को सुधारने की जो अनथक कोशिश की थी, दया-धर्म का जो सबक़ दिया था, सब अकारत हो जाता और आज मुसलमानों को संसार में मुँह दिखाने की जगह न रहती। दुनिया वालों को अंधेरे उजाले का फ़र्क़ न मालूम होता और मुसलमानों के धर्म का चिराग़ जो थोड़ा बहुत रौशनी दे रहा है, बिल्कुल ही बुझ कर रह जाता।

हुसैन[अ०] जब घर से निकले हैं तो उनके साथ भी बहुत आदमी थे लेकिन उनके बार-बार यह बात कहने से कि "मैं हुकूमत के लोभ और लालच में नहीं जा रहा हूँ। मेरे साथ रहने वालों के लिए मौत का सामान है" लोग साथ छोड़ते चले गये और बहत्तर जियाले और सच्ची मोहब्बत करने वाले रह गये जिनको यह धुन थी इस धर्मात्मा दैवीय रूपी मनुष्य के साथ सच्चाई के प्रचार में जान देकर अमर हो जाएं।

हुसैन[अ०] ने अपने दुश्मनों से कहा कि तुम लोगों में बहुत से ऐसे आदमी हैं जिन्होंने मुझे चिट्ठियाँ

लिखकर बुलाया था और अब तुम लोग अनजान हो गए हो तो मुझे मदीने वापस जाने दो, मैं लड़ाई झगड़ा करना और ख़ून बहाना नहीं चाहता। मगर जब किसी ने इन बातों पर कान न दिये, उस वक़्त हुसैन[अ॰] ने एक आख़िरी बात यह कही कि 'अच्छा मुझे रास्ता दे दो कि मैं हिन्दुस्तान चला जाऊँ''।

भारत के सपूतों! यहाँ से हुसैन[अ॰] और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध शुरु होता है। कैसे मीठे शब्द हैं कैसे भरोसे की छावों में कहे गये थे। सारा संसार पड़ा हुआ था। ईसाईयों के बहुत से मुल्क थे, चीन था, जापान था अविंसीनिया (हबश का देश) था जहाँ उनके नाना के वक़्त में मुसलमान मक्के से जाकर मेहमान रह चुके थे मगर हुसैन[अ॰] ने किसी तरफ़ ध्यान न दिया। उन्होंने अपने रहन-सहन के लिए हिन्दुस्तान का चुनाव किया था और हिन्दुस्तान ही का नाम उनकी ज़बान पर आया था। वह जानते थे कि हिन्दुस्तान के रहने वाले ब्राहम्ण, राजपूत, वैश्य कोई जीव हत्या को पसन्द नहीं करता। यह लोग मेहमान का दुख दर्द समझेंगे और उनका आदर करेंगे। (मुझे रास्ता दे दो मैं हिन्दुस्तान चला जाऊँ) हुसैन[अ॰] की ज़बान से निकले हुए इन शब्दों का ज़िक्र किताबों में मौजूद है। अभी 16 मार्च 1958[ई॰] को दाऊद अली मिर्ज़ा, सदस्य पार्लियामेण्ट ने पार्लियामेण्ट के इजलास में मस-ल-ए-कशमीर पर जो तक़रीर की है उसमें इस बात का हवाला दिया है कि हज़रत इमाम हुसैन हिन्दुस्तान आना चाहते थे।

(अख़बार 'सियासत', हैदराबाद दकन, 17 मार्च 58[ई॰])

हुसैन[अ॰] और हिन्दुस्तान का यह सम्बन्ध दिन बदिन मज़बूत होता गया और एक दिन वह समय आया कि जब भारत देश को अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से आज़ाद करने वाले गाँधी जी जैसे बड़े आदमी ने जब वह पहली बार हुकूमत का क़ानून तोड़ने उठे थे और नमक बनाने जा रहे थे, अपनी ज़बान से यह बात कही थी कि मैं हज़रत इमाम हुसैन[अ॰] के अनुकरण में अपने साथ बहत्तर आदमी हुकूमत के मुक़ाबले के लिए लेकर जा रहा हूँ। गाँधी जी की इज़्ज़त हिन्दुस्तान के हर आदमी के दिल में उतनी है कि यहाँ का हर बच्चा जवान और बूढ़ा उन्हें बापू जी कहकर पुकारता है और वह भारत देश के बाप माने गए हैं। गाँधी जी के मन में हुसैन[अ॰] के नाम और काम की इतनी इज़्ज़त थी कि उन्होंने देश की भलाई और हुकूमत से लड़ाई का काम हुसैन[अ॰] का नाम लेकर शुरु किया। यह है हुसैन[अ॰] और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध। अभी हमें इस सम्बन्ध के प्रमाण में बहुत सी बातें कहना है मगर पहले इस लड़ाई का समाचार थोड़ा बहुत सुना देना ज़रूरी है।

दुश्मनों के लश्कर ने हुसैन[अ॰] की कोई बात नहीं मानी और हुसैन[अ॰] ने दुश्मनों की बात, जिसके मानने से इज़्ज़त, आबरू, धर्म और जनता की सेवा का महाकाज सब पर पानी फिर जाता, मन्जूर नहीं किया और लड़ाई ठहर गई।

दुश्मनों ने पहला काम यह किया कि जो किसी धर्म और देश के आदमियों ने नहीं किया होगा कि हुसैन[अ॰] के ख़ेमों और नहर के बीच में फ़ौज की एक दीवार खड़ी कर दी और पानी ले जाने का रास्ता बन्द कर दिया। वह पानी जिसको पैदा करने वाले ने अपने सब बन्दों के लिए, वह अमीर हो या ग़रीब हो, बादशाह हो या फ़क़ीर हो, बग़ैर किसी मोल तोल के संसार की पैदाईश के पहले दिन से आम कर रखा है और जो कभी जानवरों के लिए भी बन्द नहीं किया गया। पानी न मिलने से मोहर्रम की दस तारीख़ तक यह हाल हो गया कि प्यास के मारे सब की ज़बानें सूख कर तालुओं से चिपट गयीं। बूढे और जवान आदमियों ने बड़े संतोष और धीरज से काम लिया लेकिन बच्चों की ज़बानों से पानी-पानी और प्यास-प्यास की आवाज़ें ख़ेमों में गूँज कर हुसैन[अ॰] के साथी औरतों और मर्दों के दिलों को तड़पा रहीं थीं।

पिछली रात को हुसैन[अ॰] ने अपने बहत्तर आदमियों को एक ख़ेमे में इकटठा करके वह तक़रीर की थी जो तेरह सौ बरस से आज तक हर आदमी को अचम्भे में डाल रहीं है। हुसैन[अ॰] ने कहा कि मेरे दोस्तो, भाईयों, बेटों और भाँजों! सब मेरा साथ देने से हाथ उठा लो और मुझे अकेला छोड़कर जिस तरफ चाहो चले जाओ मैं तुम्हें खुले दिल से इजाज़त देता हूँ। मुझे तुम्हारे चले

जाने से कोई रंज न होगा। ये लोग मेरे ही लहू के प्यासे हैं। इन्हें तुमसे कोई सरोकार नहीं है। यह तुम से कुछ नहीं बोलेंगे। इन्होंने मेरी सहायता को आने वालों का रास्ता रोका है, मुझे छोड़कर जाने वालो से यह कोई झगड़ा नहीं करेंगे। मगर कोई इस बात पर राज़ी न हुआ। अब हुसैन[अ०] ने वह दिया जो ख़ेमे में जल रहा था बुझा दिया कि जो आदमी अपने मन में अपनी जान बचाकर चले जाने का विचार कर रहा हो और जिसकी आँखें देखते जाते हुए लाज आती हो, वह अंधेरे में चला जाए। मगर ऐसा नहीं हुआ। ये लोग अपनी धुन के पक्के और अपने इरादे के मज़बूत रहे।

उसी रात को जब हुसैन[अ०] अपने ख़ेमे में साथियों की जानें बचाने की कोशिश करते रहे थे, औरतों के ख़ेमों में माएँ अपने-अपने बच्चों को, बहनें अपने भाईयों को बाप दादा की बहादुरी की कहानियाँ सुना-सुना कर दुश्मन से लड़ने और हुसैन[अ०] के साथ जान देने के लिए तैयार कर रही थीं।

सुबह होते ही दुश्मन की फ़ौज ने मैदान में निकल कर अपने पैर जमा लिये। हुसैन[अ०] और उनके साथी भी नमाज़ पढ़कर सामने आ गए। हुसैन[अ०] ने फिर एक बार दुश्मन की फ़ौज की तरफ़ मुँह करके और उनको पुकार के एक उपदेश दिया। लड़ाई से बाज़ आने (फिर जाने) के लिए समझाया और अच्छी तरह यह बात उनको समझा दी और जतला दिया कि मेरा द्वोष नहीं है, मैंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा और सिवाए भलाई के किसी के साथ कोई बुराई नहीं की। इस उपदेश को सुनकर चार आदमी दुश्मन की फ़ौज से निकल कर हुसैन[अ०] की तरफ़ आ गए। संसार ने देख लिया कि सच्चाई में कितनी ताक़त और सत्य की आवाज़ में कितना कसबल होता है। यह लोग यह समझकर जान बूझकर उस तरफ़ आये थे, जहाँ सिवाए भूक प्यास मौत के और कुछ न था। जिन पुस्तकों में इस लड़ाई का ज़िक्र है उनकी छानबीन से यह भी मालूम होता है कि रात के वक़्त भी बीस आदमी यज़ीद के लश्कर से निकलकर हुसैन[अ०] के साथियों में आकर मिले थे। यह समाचार इस बात का प्रमाण है कि हुसैन[अ०] की तरफ़ सच्चाई और रौशनी थी और उनके दुश्मनों की तरफ झूठ का अन्धेरा।

लड़ाई शुरु हुई और सूरज डूबने से पहले ख़त्म हो गयी। 72 तीन दिन के प्यासे आदमियों का 30,000 ख़ून के प्यासे आदमियों से मुक़ाबला क्या जो कटोरे भर-भर कर पानी पी भी रहे थे और धरती पर भी लुँडा रहे थे। मगर हुसैन[अ०] के प्यासे साथी क्या बहादुर थे! एक-एक मरने वाला पचास-पचास, सौ-सौ और इससे भी अधिक दुश्मनों को ठिकाने लगाकर ज़मीन पर गिरा है। हम पूरी लड़ाई और एक-एक हुसैन[अ०] के सावंत साथी का हाल कहाँ तक बयान कर सकते हैं! बहुत सी बातें कहने के क़ाबिल हैं मगर इतना वक़्त कहाँ से लायें, फिर भी एक-दो बातें ज़रूर कहना है।

दोपहर के बाद जो नमाज़ पढ़ी जाती है और जिसे जुहर की नमाज़ कहते हैं, लड़ते-लड़ते उसका वक़्त आ गया। दुश्मन के लश्कर से बराबर तीर आ रहे थे, मगर ये अल्लाह को याद रखने वाले बन्दे कैसे नमाज़ छोड़ सकते थे? हुसैन[अ०] इमाम थे। वह सबके आगे और सब उनके पीछे नमाज़ पढ़ने के लिए खड़े हो गये मगर हुसैन[अ०] के दो मनचले साथियों ने ऐसा जीवटी काम किया कि जिसको सुनकर बड़े-बड़े सूरमाओं के होश उड़ जाते हैं। इन दो मौत से खेलेने वाले सिपाहियों ने नमाज़ नहीं पढ़ी। यह दोनों हुसैन[अ०] के सामने खड़े हो गये और जितने तीर आए अपने सीनों पर लेते रहे। नमाज़ ख़त्म होते ही उन में का एक बहादुर गिरा और ख़त्म हो गया और दूसरा फिर लड़ाई में शरीक हुआ। तलवार खींचकर दुश्मनों पर जा पड़ा और बहुत से दुश्मनों को मार कर अपनी जान दे दी। ऐसे मौक़े पर हर बहादुर की यह इच्छा होती है कि दो चार दस पाँच को मार कर मरे लेकिन इन दो आदमियों ने अपने दिल पर कितना बड़ा पत्थर रखा होगा, जब ये समझ कर हुसैन[अ०] के सामने खड़े हुए थे कि हमें सिर्फ़ तीर खाना है, तलवार चलाना नहीं है। बहादुरी के ऐसे नमूने और वफ़ादारी की ऐसी मिसालें संसार में शायद ही कुछ देखने या सुनने में आयी होंगी।

हुसैन[अ०] के साथियों में 12-14 वर्ष के बच्चे भी

थे, और अट्ठारह वर्ष का जवान हुसैन[अ०] का लाडला बेटा भी था। सब छोटे बड़े ख़ूब-ख़ूब लड़े। अट्ठारह वर्ष वाला जियाला दुश्मनों की सफ़ों में घुसकर और लड़ भिड़ कर फिर निकल आया। बाप को आकर सलाम किया। अपनी प्यास की तकलीफ़ बयान की और फिर वापस जाकर लड़ा और शहीद हो गया। अब हमें एक 37 वर्ष का जवान हुसैन[अ०] के सौतेले भाई अब्बास का हाल और हुसैन[अ०] के छः महीने के बच्चे का समाचार और बयान करना है।

औरतों और बच्चों को प्यास की तकलीफ़ मर्दों से कहीं ज़्यादा थी। यह देखकर अब्बास ने एक सूखी मश्क भी अपने साथ रख ली थी। यह छोटी सी फ़ौज के अफ़सर थे। लश्कर का निशान भी उनके कन्धे से लगा हुआ था। उन्होंने एक बार भाईसे इजाज़त ली और दरिया पर तीर की तरह चले और ऐसी तलवार चलाई कि बहुत से आदमियों को गिराकर, भगाकर और लोहे की सफ़ों को तोड़कर किनारे पहुँच गये। ख़ुद पानी नहीं पिया, मश्क पानी से भर ली और उसी तरह तलवारें मारते हुए वापस आ रहे थे, किसी दुश्मन के वार से एक हाथ कट कर गिर पड़ा। फ़ौरन ही दूसरे हाथ में तलवार लेकर रास्ता साफ़ करने लगे। अभी ज़्यादा दूर नहीं गये थे कि दूसरा हाथ भी कटकर बेकार हो गया। इस हालत में घोड़े को एड़ देते हुए मश्क के तसमे को दाँत से दबाए हुए हुसैन[अ०] के ख़ेमों की तरफ़ बढ़े चले जाते थे कि इतने में मश्क के ऊपर एक तीर आकर लगा और पानी बहने लगा। जिस मतलब से हाथ कट जाने पर भी मश्क छाती से लगाए बढ़े चले जा रहे थे वही बाक़ी नहीं रहा तो हौसला भी टूट गया। घोड़े से गिरे। मश्क और निशान छाती से लगाए हुए दुनिया से रुख़सत हो गए।

अब छः महीने के बच्चे की बात सुनो। छः महीने के बच्चे में क्या जान होती है! माँ का दूध सूख गया, पानी का पता नहीं, अरब देश की गर्मी, जलती हुई धूप में ख़ेमे, बच्चे की हालत बिगड़ गयी। हुसैन[अ०] अब अकेले थे और इस आख़िर वक़्त में बीबियों और बच्चों से रुख़सत होने के लिए जिनमें एक चार वर्ष की लाडली बच्ची भी थी, हुसैन[अ०] ख़ेमे में गए और वहाँ छः महीने के बच्चे, अली असग़र को देखा कि प्यास की तकलीफ़ से ऐसा निढाल हो रहा है कि इसके जीने की आशा बाक़ी नहीं रही है। हुसैन[अ०] ने सोचा कि शायद यह लोग तरस खाकर इस बच्चे को दो बूँद पानी पिला दें और इसकी जान बच जाए। इस सोच विचार के बाद माँ की गोद से लेकर मैदान में आ गए। दुश्मनों को इसकी हालत दिखायी और कहा कि तुम अपने हाथ से इसे पानी पिला दो। दुश्मनों के लश्कर में हलचल सी पैदा हुई थी कि सेनापति के हुक्म से एक पत्थर दिल वाले आदमी ने ताक कर ऐसा तीर बच्चे के गले पर लगाया कि वह तड़प के बाप के हाथों पर तमाम हो गया। इस संसार में ऐसा अपराध कभी न देखने में आया था, न सुनने में। करबला के सामचार का यह ऐसा दुख भरा क़िस्सा है जिसको सुनकर हर आदमी के आँसू निकल आते हैं और हर धर्मी और अधर्मी का दिल सीने में तड़प जाता है।

अब दुश्मन हुसैन[अ०] की जान लेने के लिए बढ़े और चारो तरफ़ से हज़ारों ने घेर लिया। हुसैन[अ०] कोई मामूली आदमी नहीं थे, वह बड़े सूरमा थे और कमज़ोरों की तरह बग़ैर हाथ पाँव हिलाये जान देना गवारा नहीं कर सकते थे। मुसलमानों का धर्म यह है कि अपनी तरफ़ से पहल न करो, मगर जब तुम पर कोई हाथ उठाये तो पूरी ताक़त से मुक़ाबला करो फिर तुम पर कोई दोष नहीं है। जिन लोगों ने ऐसा नहीं किया, वह बादशाह हों या फ़क़ीर, मुसलमानों को और मुसलमानों के धर्म को बदनाम करने वाले हैं। यह धर्म हुसैन[अ०] के नाना ही का तो फैलाया हुआ था। हुसैन[अ०] से ज़्यादा कौन समझ सकता था जो अपनी ज़बान और अपने काम से इसकी सेवा और इसका प्रचार करते रहे।

हुसैन[अ०] 3 रोज़ से भूखे और प्यासे थे। ज़ख़्मों से चूर-चूर हो रहे थे। सब भाई, बेटे, भतीजे और बचपन के मित्र आँखों के सामने अपनी जानें दे चुके थे। एक छः महीने का बच्चा तो उनकी गोद ही में तीर से ज़बह कर दिया गया था। ऐसी हालत में आदमी के हवास बाक़ी नहीं रहते मगर हुसैन[अ०] के साथ सत्य की शक्ति और धर्म की सहायता थी। पैदा करने वाले की तरफ़

ध्यान लगाए हुए और ये कहकर कि मुझे ख़ून बहाते हुए अफ़सोस होता है लेकिन ये लोग मुझे इस पर मजबूर किये देते हैं। तलवार खींच ली और ऐसा डटकर मुक़ाबला किया कि तीन मर्तबा दुश्मन के पूरे लश्कर को पीछे हट जाना पड़ा और किसी में सामने आने का साहस बाक़ी नहीं रहा। अब दूर से तीरों की बौछार हो रही थी और पत्थर फेंक-फेंक कर ज़ख़्मी किया जा रहा था। किताबें हमें बताती हैं कि कई सौ आदमी इस वक़्त हुसैन[अ०] के हाथ से मारे गए हैं। हुसैन[अ०] अब भी किसी के बस के नहीं थे, मगर उस नमाज़ का वक़्त आ गया था जो सूरज डूबने से पहले पढ़ी जाती थी। तलवार नियाम में करके घोड़े से उतरे और दोनों हाथों से कर्बला के मैदान की मिट्टी जमा करके सजदा करने की जगह बनायी और पूरी शान्ति और संतोष के साथ नमाज़ शुरु कर दी। जिस वक़्त सजदे में गए हैं, ये भागने वाले कायर सिपाही चारो तरफ़ से टूट पड़े और सजदे की हालत में गर्दन के पीछे से तलवार फेर कर शहीद कर दिया। क़ातिल ने सर उठाकर बरछी की अनी पर बड़े घमण्ड के साथ रखा और अपने अपराधी साथियों को लड़ाई ख़त्म होने की ख़बर दी। इसके बाद बहुत से महाकायर दुष्ट और पापी मुसलमान सामान लूटने के लिए हुसैन[अ०] के ख़ेमे में चले गए। सामान भी लूटा और ख़ेमों में आग भी लगा दी। जिसके कारण बीबियों और बच्चों को बाहर मैदान में निकलना पड़ा और सेनापति के हुक्म से इन सब बीबियों और बच्चों को रस्सी में बाँध दिया गया। हुसैन[अ०] के बीमार बेटे को उसके बिस्तर से खींचकर हाथों में रस्सी बाँध दी और पावों में बेड़ी डाल दी। यह बीबियाँ और बच्चे जो कहीं न आ सकते थे, न जा सकते थे, इस लड़ाई के क़ैदी बना लिये गये और दूसरे दिन सुबह को उसी हालत से कि उनके सरों पर चादरें तक नहीं थीं, साथ लेकर हुसैन[अ०] और उनके साथियों की लाशें जंगल में बग़ैर गोर गढ़े के छोड़कर कूफ़े की तरफ़ चल पड़े, जहाँ यज़ीद का गवर्नर इब्ने ज़ियाद हुकूमत कर रहा था जो हुसैन[अ०] का सबसे बड़ा दुश्मन था। यह दुख-दर्द की कहानी बहुत बड़ी है और बहुत सी बातें वक़्त की कमी के कारण बयान करने से रह जाती हैं लेकिन हमें हुसैन से भारत का सम्बन्ध बताना और समझाना है।

यह क़ैदी कर्बला से कूफ़े और कूफ़े से शाम यज़ीद की राजधानी को इस तरह लाए गए कि आगे-आगे हुसैन[अ०] और उनके साथियों के सर बरछियों की अनियों से बन्धे हुए थे और पीछे-पीछे ऊँटों पर क़ैदी सवार थे। रास्ते में जिन-जिन शहरों और बाज़ारों से गुज़र हुआ, वहाँ से इस अन्याय और अपराध की ख़बर सारे देश में आग की तरह फैल गयी और बहुत से मुसलमान जिनके दिलों में न्याय और धर्म का ज़रा सा भी ख़याल था, अपने पैग़म्बर[स०] के नवासे हुसैन[अ०] का सोग मनाने लगे और यह साल के साल सोग मनाने की रीति मुसलमानों के धर्म का एक कार्य बन गयी। सोग सारे ही मुसलमान मनाते हैं, मगर तरीक़े ज़रा अलग-अलग हैं।

इस तरह साल के साल घरों के अन्दर, घरों के बाहर मैदानों में बाज़ारों में सोग मनाने का सबसे उत्तम प्रभाव ये है कि हर साल ग्यारह महीने बाद ये समाचार याद आ जाता है और संसार को शिक्षा मिलती है कि जनता की भलाई और सत्य का पालन करने के लिए झूठों और अपराधियों और अधर्मों के मुक़ाबले में इसी तरह डट जाना चाहिए और जान माल किसी चीज़ की परवाह नहीं करना चाहिए। हुसैन[अ०] और उनके साथियों ने जो कुछ किया है वह सिर्फ़ मुसलमानों ही के लिए नहीं किया है बल्कि सारे संसार को सबक़ दिया है इस शिक्षा में किसी धर्म किसी जाति किसी देश का सवाल नहीं है, जो भी इस से फ़ायदा उठाए उसके लिए है।

हमारे भारत देश में यह सोग हर देश और हर मुल्क से ज़्यादा मनाया जाता है और मुसलमानों के अलावा हज़ारों हिन्दू भाई हुसैन को इस तरह मानते हैं और इस तरह सोग मनाते हैं जैसे हुसैन[अ०] उनके अपने हैं और उनकी गिनती बड़े देवताओं में है। उत्तर प्रदेश हो या मध्य प्रदेश, पंजाब हो या बंगाल, हिन्दुस्तान या पाकिस्तान, तिब्बत से रास कुमारी (कन्याकुमारी) तक हिन्दू मुसलमानों के साथ-साथ हर जगह हुसैन[अ०] का सोग मनाने में शरीक होते हैं, ताज़िया रखते हैं, अलम सजाते हैं, रोते हैं, मातम करते हैं, कविताएं पढ़ते है

और फिर ये बात नहीं कि अनपढ़ हिन्दू ही सोग मनाने वाले हैं। बड़े-बड़े विद्वान, पढ़े लिखे हिन्दू हुसैन[अ॰] के गुन गाते हुए दिखाई देंगे। हमारे देश के हिन्दू कवि जिन्होंने परदेसी हुसैन[अ॰] के लिए कवितायें कहीं हैं, अगर उनके नाम लिखे जाएं तो एक छोटी सी पुस्तक तैयार हो सकती है। भारत में जितनी ज़बानें बोली जाती हैं कोई ज़बान ऐसी नहीं है जिसमें हुसैन[अ॰] के लिए कविता न हों। बड़े-बड़े पढ़े लिखे हिन्दुओं ने पुस्तकें लिखी हैं। प्रेमचन्द तो अभी हाल में हमारे सामने मौजूद थे, जिनकी पुस्तक ''कर्बला'' उर्दू ज़बान में छप चुकी है। ऊँची ज़ात के ब्राहम्णों से लेकर गोंद, भील और लम्बाड़ते तक हुसैन[अ॰] के चाहने वालों में दिखायी देते हैं।

हिन्दुस्तान में 10 ब्राहम्णों की एक शाखा है जो ''हुसैनी ब्राहम्ण'' कहलाते हैं। यह गंगा, जमना, सरजू, घाघरा के मैदान में इलाहाबाद, गोरखपुर की बस्तियों में ज़्यादा पाये जाते हैं। इनमें दत्त, वेद, झीर, बलि, लाव, मुहार, युनिवाल कितनी ज़ातें हैं। ये लोग पूरान क़ौम के हैं। सुर्ख़ व सफ़ेद और मज़बूत जिस्म वाले होते हैं। महाराजा बनारस, बीना युवा, टकारी, लाल गोला और महाराजा साहब नमकू भी इसी क़ौम से हैं। महाभारत से भी पहले इस क़ौम का पता चलता है। इनके ख़ानदानी ख़िताब महतिया, बख़्शी, रायेज़ादे, सुल्क और राय शाही ज़माने के दिये हुए हैं। इनका सिलसिला बिहार, यू०पी० और पंजाब में दूर तक फैला हुआ है। इन सातों ज़ातों में दत्त बहुत मशहूर हैं। यह दत्त का शब्द संस्कृत के शब्द दाता से निकला है।

ये लोग एशिया के बीच के हिस्सों अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, अरब में भी रहे हैं और अपनी तलवार की धाक बिठा चुके हैं। कहानियों, कहावतों और कत्बों में इनका ज़िक्र आया है। शाह मोहम्मद नज़ीर हाशमी की किताब ''शहादते उज़्मा'', मिर्ज़ा मोहम्मद अज़ीम बेग की रिपोर्ट 'बन्दोबस्त गुजरात 1868[ई॰]', और 'जन्गनामा' पृष्ठ170, 176, अहमद साहब पंजाबी की लिखी हुई पुस्तक से पता चलता है कि दत्त क़ौम के ब्राहम्णों ने कर्बला की लड़ाई में हुसैन[अ॰] का साथ दिया था और उनके दुश्मनों से लड़े थे और एक पूर्वी जवान के कव्त (कविता) से ये पता चलता है कि हुसैन[अ॰] की शहादत के बाद अमीर मुख़तार के साथ शरीक होकर हुसैन[अ॰] के दुश्मनों से बदला लिया था। इस कव्त के बाज़ शेरों का मतलब हम बयान कर रहे हैं। एक जगह है कि ''बुज़दिल सब भाग कर नज़रों से ग़ायब हो गए दत्त लोगों ने हज़रत इमाम हुसैन[अ॰] की पूरी-पूरी मदद की और एक क़दम भी मैदान से पीछे न हटे।

दूसरी जगह लिखा है कि ''जब उन्होंने मैदान में फ़तह पाई तो ख़ूब ख़ुशी और फ़तह के नक़्क़ारे बजाए गए शोर हुआ कि क़त्ले हुसैन का बदला ले लिया गया।''

फिर एक जगह लिखा है ''राहिब के सात लड़कों ने हुसैन[अ॰] की रिफ़ाक़त का हक़ अदा किया। उन्होंने मज़लूम शहीद पर अपनी जानें क़ुर्बान कर दीं। ऐ हुसैन[अ॰] की सन्तान और हुसैन[अ॰] के नाम लेने वालो तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम दत्त लोगों को न भुलाओ।''

शाह मोहम्मद नज़ीर हाशमी की किताब और हमारी किताब ''हुसैन और हिन्दुस्तान'' में यह क़ौल मौजूद है। दत्त लोगों में एक किताब ''हुसैन पोथी'' के नाम से देखी गई है जो कहीं-कहीं किसी ख़ास मौक़े पर पढ़ी और सुनी जाती थी। शाह साहब लिखते हैं किः-

''ग़ाज़ीपुर में राय बहादुर सालिक राम इसी क़ौम से थे और इनके पास कुछ कविताएं इसी तरह की थीं। मुझे खुद भी एक डाक्टर राम लाल पानीपत में मिले जो हुसैनी ब्राहम्ण थे। हमारे हिन्दु भाइयों के कितने ही कुन्बों में ऐसी पुस्तकें और कविताएं, कव्त और मिसालें मिल सकती है जिस से हुसैन और हिन्दुस्तान के सम्बन्ध का ज़्यादा हाल मालूम हो सकता है।

हिन्दुस्तान में बीस बाइस रियासतें ऐसी थीं जहाँ रियासत की तरफ़ से साल के साल हुसैन[अ॰] का सोग मनाया जाता था। इसके राजाओं ने मोहर्रम के दिनों में जब उनका लश्कर किसी लड़ाई के कारण शहर के बाहर पड़ा था, जंगल में भी ये सोग मनाया करते थे और एक छोलदारी में अलम वग़ैरा सजाए रखते थे और मजलिस मातम हुआ है। यह बात मैंने एक अंग्रेज़ की रिपोर्ट (Letters from Madratta Camp) से नक़्ल

की है। ग्वालियर के महाराजा हुसैन^{अ०} के नाम पर फ़क़ीर बनते थे और दस मोहर्रम को ताज़िये के साथ पैदल जाते थे। कोई क़ौम हिन्दुस्तान की ऐसी नहीं है जिसमें हुसैन^{अ०} का सोग न मनाया जाता हो, सुना है लाहौर में सिक्खों की तरफ़ से भी एक ताज़िया उठाया जाता है।

हुसैन^{अ०} के मानने वालों में ब्राहम्ण भी मिलेंगे और हरिजन भी। यह है हुसैन^{अ०} और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध। मगर इस सम्बन्ध का हाल हमारे भारतवासियों को मालूम नहीं। बहुत कम आदमी इस बात को जानते हैं कि हुसैन^{अ०} ने भारत की तरफ़ आने का इरादा ज़ाहिर किया था और वह हर साल भारत के मेहमान होते हैं। यह बात न जानने की वजह से अंग्रेज़ राज्य के समय कभी-कभी हिन्दू-मुसलमानों में अलम-ताज़िया के कारण झगड़ा हो जाता था। अगर ये भेद सब हिन्दु भाइयों को मालूम होता और उनको यह बता दिया जाता है कि हुसैन^{अ०} तो भारत के मेहमान हैं और तुम्हारा उनका तेरह सौ वर्ष का सम्बन्ध है तो हमें विश्वास है कि कभी ऐसे लड़ाई-झगड़े की नौबत न आती और सब हिन्दू-भाई ताज़िये का आदर करते और हुसैन^{अ०} के सोग में मुसलमानों का साथ देना धर्म की बात समझते।

हुसैन^{अ०} का सोग मनाने में किसी क़ौम और धर्म के आदमी को दुख पहुँचने का कोई कारण ही नहीं है। यह लड़ाई जो कर्बला के मैदान में हुई है किसी दूसरी क़ौम से नहीं हुई थी। मुसलमानों की आपस की लड़ाई थी। एक तरफ़ सच्चे मुसलमान थे, एक तरफ़ नाम के मुसलमान। ऐसे समाचार में किसी क़ौम को हुसैन^{अ०} का सोग मनाने वालों से क्या शिकायत हो सकती है। भारत के रहने वाले मुसलमान हिन्दू सिक्ख ईसाई पारसी किसी धर्म के मानने वाले हों सब से हुसैन^{अ०} का सम्बन्ध है। बात इतनी है कि किसी को ख़बर है किसी को ख़बर नहीं है। हमने अपनी कविता 'कर्बल नगरी' में भी इस सम्बन्ध का वर्णन किया है और अपनी पुस्तक "हुसैन और हिन्दुस्तान" में पूरा-पूरा हाल लिखा है।

हमने हुसैन और हिन्दुस्तान के सम्बन्ध का सहारा लेकर अपनी हिन्दी भाषा की कविताओं में हिन्दु-मुस्लिम मेल-जोल की अपील की है जिसके बाज़ शेर हम लिखते हैं:-

(1)

अब जा के हिमालय पर्वत से लय मातम की टकराती है।
उस देश की 'नज्मी' दूर'बला जिस देश पे यह ग़म छाएगा।।

(2)

जब आए हुसैनी सेवा में सब हिन्दु-मुस्लिम एक हुए।
मिल जायेंगे 'नज़्मी' दिल भी कभी, जब उनकी नजर पर बात रही।।

(3)

अपने को जो चाहे 'नज्मी', उसको कौन न चाहे।
भारत माता सोग मनाकर मन हर लें ये हमारे।।

(4)

स्वामी कितनी दूर ते लगा प्रेमी बान,
उठी लहर फ़ुरात से पहुँची हिन्दुस्तान।
भूमि राम कृष्ण की कर्बल का संदेश,
आँसू तुमरे सोग के और गंगा जमनी देश।
दो जग के सहारे क्या कहना।
सत जग के सितारे क्या कहना।।

(5)

इस देश की आँखें भी 'नज्मी' प्यासी थीं हुसैनी दर्शन की।
भारत में उजाला पहुँचा है कर्बल में दरस दिखलाया था।।

+++

मेरा अक़ीदा है कि इस्लाम की तरक़्क़ी उसके मानने वालों की तलवारों की एहसानमन्द नहीं बल्कि हुसैन जैसे औलियाए केराम की क़ुर्बानियों का नतीजा है। (महात्मा गाँधी)

हुसैन^{अ०} की क़ुर्बानी हर फ़िरक़े और क़ौम के लिए हिदायत के रास्ते की रौशनी है। (पंडित जवाहर लाल नेहरू)

हुसैन अ० कौन थे?

मौलाना रज़िउद्दीन हैदर साहब क़िब्ला, संस्थापकः यादगारे हुसैनी कालेज इलाहाबाद

प्यारे मित्रों! तुम भारतवर्ष में अपने मुसलमान भाइयों को देखते होगे कि यह लोग प्रतिवर्ष मुहर्रम के मास में किसी शहीद का धार्मिक बलिदान भिन्न-भिन्न प्रकार से मनाते हैं। घरों में मजलिसें स्थापित (संयोजित) करके उनका स्मरण करके रोते हैं और सड़कों पर जुलूस निकालकर रंज और ग़म को प्रकट करते हैं। तुम जानते हो कि वह कौन थे? वह अरब देश के धार्मिक मार्ग प्रदर्शक मुहम्मद साहब की पवित्र पुत्री के दुलारे और अली अ० की आँखों के तारे थे जो तीन हिजरी में मदीने में पैदा हुए। यह नाम तुम्हारे लिये अपरिचित नहीं किन्तु तुम इस नाम को सैकड़ों बार तथा हज़ारों बार सुन चुके होगे। परन्तु भाइयों मेरा विचार है कि शायद तुमको इनके ठीक-ठीक वृत्तान्त और उनके जीवन के ठीक-ठीक हालात के सुनने और सुनकर उस पर ध्यान देने का अवसर बहुत कम मिला होगा। इतना तो तुम अवश्य जानते होगे कि यह किसी बड़े ऐतिहासिक और धार्मिक घटनाओं के वीर (Hero) हैं। मगर तुम इस घटना की विशेषता और उनकी प्रतिष्ठा से अवश्य अपरिचित होगे। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आओ और थोड़ी सहन शक्ति के द्वारा इनके पवित्र चरित्र और आचरण के जानने में कुछ समय व्यतीत कर दें, और देखो कि हुसैन अ० ने पवित्र इच्छा के लिए तन, मन, कुटुम्ब अर्थात किसी वस्तु को शुभ कार्य प्रिय नहीं समझा। सत्यता के लिए बड़ी सी बड़ी भेंट भी इन्होंने बड़े साहस और बहादुरी से अर्पण कर दी।

हुसैन अ० के बलिदान के सम्बन्ध में हिन्दुओं की रायें

महात्मा गाँधी की राय

मैंने कर्बला की घटना के विषय में उस समय पढ़ा जब कि मैं जवान था। और उस घटना ने मुझको मुग्ध कर दिया।

('सरफ़राज़' लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1934)

हिज़ एक्सलेन्सी राजा राजयान सर किशुन प्रसाद, महाराजा बहादुर यमीनुस्सलतनत, के.सी. आई.ई., जी.सी.आई.ई. पेशकार व सदर आज़म बाब हुकूमत सरकार आली, हैदराबाद

इस घटना से जो अभिप्राय हुसैन अ० का था उसके प्रकट करने के लिए आवश्यक था कि इस घटना की यादगार स्थापित की जाती। वास्तव में ऐसा ही हुआ। संसार के विद्वानों ने इस घटना को प्रचलित रखने के लिए भिन्न-भिन्न नियमों से रंज प्रकट किया इन घटनाओं को हर साल बयान करना आरम्भ किया, केवल इस अभिप्राय से कि संसार में इनका प्रचार हो जिनको दुखी हुसैनअ० ने अपनी घटना को कठिन से कठिन श्रेणी तक पहुँचा कर संसार वालों के सामने पूर्ण पाठ के भेष में अर्पण किया था। हुसैन अ० की मृत्यु एक ऐसी बड़ी घटना है कि जैसी न कभी कहीं हुई और न स्वयं इस्लामी इतिहास उसकी समता कर सका। प्राचीन धर्मों और उनके इतिहासों को यदि इसी प्रकार मान लिया जाए जिस प्रकार हमारे सामने इस समय उपस्थित हैं, तब भी उनके सामने शहीदों का क्रम कठिनाई से हमारे शहीद की प्रतिष्ठा (व भल मनसाहत) की तुलना कर सकेगा।

'सरफ़राज़', लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1931

मिस्टर आनन्द म्याघर एम.ए.बी.एल. प्रचीन एडिटर, इनचार्ज (सरवेन्ट); (इंगलिश बसबन्ती):-

हुसैन और उनके साथी एक-एक करके धर्म की वेदी पर बलिदान हो गये। उन्होंने तलवारें खाईं, लेकिन

शिकवा व शिकायत का शब्द भी मुँह पर न लाए। वह घायल होकर बजाए दुखी होने के प्रसन्न होते थे और ईश्वर को धन्यवाद देते थे।

संसार आज तक शहीदे कर्बला की बहादुरी हिम्मत, वीरता, दृढ़ता और संतोष को नहीं भूला है। जो नमूना आप ने उत्तम बलिदान करके कर्बला के मैदान में दिखलाया, वह आज तक सैकड़ों वर्ष व्यतीत होने पर भी हमारा पथ-प्रदर्शक बन रहा है।

'सरफ़राज़' लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1931

मिस्टर मोतीलाल राव (सभापति) अमाहत बाज़ार एसोसीएशन व चटागांग नरसिंह होम।

शहीद लोग सदैव जीवित रहते हैं और उनके शिक्षा सम्बन्धी कर्तव्य और कार्यों के चिन्ह बिना जाति झुण्ड, दृढ़ के अतिरिक्त हर मनुष्य के हृदय में सदैव लिखे रहते हैं। उनके पंचभौतिक शरीर के मिट जाने के पीछे भी यह न सोचना चाहिए कि संसार उनके उपकार से पृथक हो गया बल्कि वह सदैव अज्ञानकारी नियमों से धर्म और धर्मियों की सहायता करते रहते हैं और पथ-प्रदर्शक होकर उनको सीधे पथ पर चलाते हैं, ताकि मनुष्य को बैकुन्ठ के द्वारे तक पहुँचने में सुविधा हो।

'सरफ़राज़' लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1931

पंडित बृजनाथ साहब शरग़ा, बी.ए.एल.बी. एडवोकेट, लखनऊ

हर धर्म का उत्तम नियम बलिदान है। इसमें संदेह नहीं कि प्रकृति का उत्तम नियम यही है कि जब खेत में गेहूँ का बीज अपने को मिटा देता है तब उससे बहुत सी बालियाँ उत्पन्न होती हैं। इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उदाहरण हर धर्म में मिलता है। हज़रत ईसा ने सलीब (Cross) पर जान इसलिए दी कि मनुष्य जाति का भला हो। हज़रत दधीच ने अपनी हड्डियाँ इसलिए खुशी से दे दीं कि नेकी की शक्तियाँ बदी के बल पर जागृत हों।

हुसैन ने अपना और अपने कुटुम्ब का बलिदान इसलिए किया कि सत्यता के पथ पर मनुष्य प्राण देना सीखे। जिस समय सांसारिक शक्तियाँ इस्लाम के सन्मुख लड़ाई को खड़ी थीं और भय, भूति और लालच उसकी पूरी सहायता करते थे, हुसैन ने बिना भय के सत्यता का झण्डा ऊँचा किया। जो धर्म के नशे में चूर थे। उसे यदि भय था तो केवल ईश्वर का, यदि लालच है तो केवल उसके मिलने की। संसार उसे क्या डरा सकता था। और किस वस्तु का लालच उसे डिगा सकता है। क्या अच्छा होता कि हमारे हिन्दी भाई हिन्दु और मुसलमान राजकुमार प्रह्लाद और हज़रत इमाम हुसैन के जीवन चरित्रों से यह शिक्षा ग्रहण कर लेते कि सत्यता पर प्राण देना (प्राण लेना नहीं) सदैव जीवित रहना है। तो हमारे देश का इतिहास किसी और ढंग पर लिखा जाता।

'सरफ़राज़' लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1934

पंडित मनोहर लाल तिवारी बी.ए.एल.एल.बी. एडवोकेट, वाईस चेयरमैन म्युनिस्पिल बोर्ड, लखनऊ

ऐतिहासिक दृष्टि से भी हुसैन की एक बड़ी हस्ती हो गई है और उनका गुण एक उन्नति के अन्त तक पहुँच गया है। यही कारण है कि उनकी यादगार इस समय तक जीवित है और सदैव स्थापित रहेगी। हुसैन का विजय पाना, ईश्वर के ऊपर भरोसा करना, सच्चाई को न छोड़ना, नेक और सच्चे नियमों पर बलिदान होना, कठिनाई का बहादुरी से सामना करना, अन्याय के सम्मुख कठिन से कठिन दुख सहते हुए सर न झुकाना, उनके ऐसे सिद्धान्त थे कि जिनको प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन की कसौटी बनाना चाहिए। ऐसे गुणों के होते हुए भी जो जो दुख उन्होंने और उनके कुटुम्ब तथा परिवार वालों ने उठाये हैं, उनका हाल सुनकर ज़रूर मनुष्य को रोना आता है। इस से मैं यही एक फल निकालता हूँ कि ईश्वर अपने नेक दासों की परीक्षा बहुत कठिनता से लेता है और यदि सब कठिनाइयाँ झेलकर भी वह सत्यता के पथ दृढ़ पर रहता है तो वही फिर ईश्वर से मिलने के योग्य होता है। ऐसी ज़ात हुसैन की थी।

'सरफ़राज़' लखनऊ मुहर्रम नम्बर 1934

A.C.M.

कर्बला के ख़ूनी मैदान में हुसैन की शहादत जुमे (शुक्रवार) के दिन 10वीं मुहर्रम 61हिजरी को हुई जो सन् 680ई॰ के अनुसार है। प्रतिवर्ष मुहर्रम के इन 10

दिनों में इस घटना की यादगार सब मुसलमान भारत और फ़ारस में एक ऐसे जोश के साथ मनाते हैं जिसकी मिसाल दुनिया के किसी और धार्मिक यादगार में नहीं मिलती है।

'लीडर' इलाहाबाद
26 अप्रैल सन् 1931ई०

हुसैन क्यों शहीद हुए

साठ हिजरी में जब अमीर मुआविया का देहान्त हो गया, तो उनका पुत्र यज़ीद गद्दी पर बैठा जिसे खेलकूद का व्यसन और सैर व शिकार की बान बचपन ही से थी। राज्य मिलते ही वह अपनी इसी लत में स्वतंत्रता के साथ लग गया। शराब और कबाब से उसकी सभा गर्म रहती, सुन्दर स्त्रियाँ और नौयुवक सेवक उसके आनन्द भवन की शोभा बढ़ाते थे। वह निर्दोष मनुष्यों को मृत्यु दण्ड देकर प्रसन्न होता था और पवित्र मनुष्यों के रक्त से होली खेलता था। द्रव्य के घमण्ड में चाटुकारियों को अपना सेवन बनाये चैन से जीवन व्यतीत कर रहा था। उसका आतंक सब लोगों के दिलों पर ऐसा छा गया था कि किसी को उसके प्रति कुछ बुरा करने का साहस न होता था। जब राजा का यह हाल था तो फिर प्रजा के सदाचार धार्मिक (राजनैतिक) मुल्की हाल का क्या पूछना है? प्रत्यक्ष रूप में पाप किया जा रहा था। शराब पीना और व्यभिचार अपराध न समझे जाते थे। असत्यता का वायुमण्डल देश में चारो ओर चल रहा था। यह एक अज्ञानता थी जो चारो ओर फैल रही थी।

हुसैनअ० इन आन्दोलन को देख रहे थे और मन ही मन में मनुष्य के कलंकित होने और सदाचार के मिटने पर आँसू बहा रहे थे। यज़ीद स्वयं भी जानता था कि सारा अरब देश शाही चौखट पर सर झुकाये हुए है, मगर हुसैन की दृष्टि उस पर घृणा से पड़ती है। इस विचार के पैदा होते ही उसने यह चाहा कि जिस प्रकार भी हो सके राज्य का दबाव डालकर हुसैनअ० से भी आधीनता स्वीकृत करा लेना चाहिए और उन्हें अपना सेवक बना लेना चाहिए। चुनानंचे वलीद जो मदीने का गर्वनर था, उसे एक पत्र लिखा कि वह हुसैन से मेरी आधीनता स्वीकृत करा ले। यदि वह इनकार करें तो सर काट कर यज़ीद के पास भेज दे। वलीद ने हुसैन को बुलाकर यज़ीद के पत्र को पढ़कर सुनाया, आधीनता स्वीकृत का प्रश्न हुसैनअ० के सम्मुख मरने जीने के प्रश्न के सहित पेश था। हुसैन ने समझ लिया कि यही मौक़ा है जब मृत्यु को जीवन पर उत्तेजना दी जाती है। भलमनसाहत और मनुष्यत्व, ही क्या? सच्चाई के लिए राज्य और उसकी शक्तियों को ठोकर लगा दी जाती है। यद्यपि हुसैन जैसे विद्वान, ज्ञानी, और संयमी मनुष्य के लिए एक ऐसे बुरे आचरण वाले मनुष्य की आधीनता स्वीकृत कर लेना कठिन था। हुसैन आज़ाद गोद का पला था, वह देश छोड़ सकता था, घर-बार लुटा सकता था, जान दे सकता था, मगर मनुष्यत्व और सदाचार की निन्दा उसके सहन शक्ति के बाहर थी। सर झुकाना उसकी प्राकृति में था केवल सर्वशक्तिमान ईश्वर के सामने। इस अवसर को जान-बूझकर कर्तव्य पालन करना हुसैन ही ऐसे मनुष्य का काम था। कृष्ण महाराज का उपदेश भी जो उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को दिया इसको सिद्ध करता हैः-

स्वधर्मपिच उच्छिमाना विकम्पितु मह ऋषिः।
धर्मपाधी युद्ध सेत्रेयुवन्न यत्र त्त्दचिःयस्य नविघते।।

हुसैन के लिए यह सम्भव था कि वह यज़ीद की आधीनता स्वीकृत कर लेते और इस प्रकार अपने और अपने बाल बच्चों के प्राण बचा सकते थे, मगर उनकी दृष्टि इस ओर न थी। यदि आधीनता स्वीकार कर लेते तो फिर सत्यता और झूठ, अच्छाई और बुराई में क्या अन्तर रह जाता। इसलिए बिना किसी भय को हृदय में लाये हुए, आधीनता से साफ़ इनकार कर दिया। मगर इसके पश्चात मदीना भी अब हुसैन के लिए सुख-निवास न रह गया। यह आवश्यक था कि एक न एक दिन हुसैनअ० मृत्यु के मुँह में जाते और संसार को मालूम भी न होता। इसलिए हसैुन के सम्मुख केवल एक अभिप्राय था और यह कि वह अपनी शहादत में एक ऐसा असर पैदा कर ले जो हमेशा के लिए यादगार रह जाए और संसार को जब सत्यता और झूठ का निर्णय देखना हो

तो उनकी घटना पर एक दृष्टि में सब कुछ देख लें।

मदीने से कूच

हुसैन[अ०] ने अपने प्यारे देश को छोड़ दिया। जहाँ पैदा हुए और बढ़े, उसे छोड़ते समय जो कष्ट हर एक मनुष्य के हृदय को होना चाहिए वह हुसैन[अ०] को भी था, मगर वह अपने अभिप्राय को हासिल करने के लिए सब कुछ बलिदान करने को तैयार थे। वह मनुष्यत्व के लिए प्राण तक देने को तैयार थे। इसलिए उन्होंने कुछ परवाह न की। अपने सारे कुटुम्ब को लेकर मक्के की ओर चल खड़े हुए। मक्के जाना इसलिए न था कि सेना इकटठी करें बल्कि वही समय हज का था जिस अवसर पर चारों ओर से मुसलमान हज के लिए इकटठे होते हैं। हुसैन[अ०] यह चाहते थे कि आधीनता से उनका साफ़ इनकार कर देना और एक पापी के सम्मुख स्वीकार न करना और हर प्रकार की कठिनाइयों को सहने के लिए तैयार हो जाना, यह बात हर छोटे और बड़े के कान में पड़ जाए, ताकि उनकी शहादत के बाद मार डालने के कारण के समझने में किसी को सन्देह न हो। उसी समय में जब हुसैन[अ०] मक्का में थे और उससे पहले भी कूफ़ा वाले हुसैन[अ०] को अपनी ओर बुला रहे थे, इसलिए कई हज़ार पत्र उनके पास इस बात के आए कि आप हमारी ओर आइये, हम आपकी मदद करेंगे। हुसैन ने दूरदर्शिता से सोचकर पहले अपने चचेरे भाई मुस्लिम को उनकी ओर भेजा ताकि वह वहाँ की दशा से सूचित करें। मुस्लिम के वहाँ पहुँचते ही कई हज़ार आदमियों ने हुसैन[अ०] के लिये आधीनता की। जब यज़ीद को मालूम हुआ कि कूफ़ा वाले उसके जाल से निकल कर हुसैन का साथ देने को तैयार हो रहे हैं तो शीघ्र उसेन गर्वनर कूफ़ा को जो एक निर्बल मनुष्य था, उतार करके उसके स्थान पर इब्ने ज़ियाद को गर्वनर नियत किया। उसने आते ही कठिन से कठिन हुक्म जारी किया, लोगों को क़ैद करना शुरु किया और जायदाद भी अधिकार में कर ली। इस घटना ने ऐसा प्रभाव डाला कि लोग घबरा गए और जानमाल के भय से मुस्लिम को अकेला छोड़ दिया, यहाँ तक कि मुस्लिम हुकूमत के हाथों कड़ी निर्दयता से साथ मार डाले गए। जिस समय कूफ़ा में ये सब हो रहा था और हुसैन[अ०] रास्ते में थे, एक मंज़िल पर मुस्लिम के मारे जाने की ख़बर सुनी। इस हाल के सुनते ही हुसैन[अ०] ने समझ लिया कि अब परीक्षा आरम्भ हो गई।

थोड़ी देर के पश्चात इब्ने ज़ियाद के एक लश्कर ने भी हुसैन[अ०] के क़ाफ़िले को घेर लिया जो केवल इसी बात के लिए भेजा गया था कि जाकर हुसैन[अ०] को मजबूर करके ऐसे उजाड़ स्थान पर पहुँचा दे कि जहाँ उनका काम तमाम कर दिया जाए।

दस दिन में क्या हो गया?

मुहर्रम की दूसरी तारीख़ थी, जब हुसैन और उनके थोड़े से जान बलिदान करने वाले साथी कर्बला पहुँचकर शत्रुओं की अनगिनत सेना में घिर गए। पहले तो हुसैन[अ०] ने स्त्रियों और बच्चों के विचार से अपने डेरे नहरे फ़ुरात के किनारे गाड़ दिये, मगर बैरियों की सेना ने आते ही इन डेरों को उखड़वा दिया तब हुसैन[अ०] को जलती हुई रेत में अपने डेरे लगवाने पड़े। सेनाएँ प्रतिदिन आया करती थीं। यहाँ तक कि मुहर्रम की दस तारीख़ को मौत का बाज़ार गर्म था। कम से कम तीस हज़ार फ़ौज इनके विरुद्ध थी और हुसैन की ओर केवल 72 मनुष्य थे जिसमें बूढ़े जवान और बच्चे सब सम्मिलित थे। सातवीं मुहर्रम से हुसैन और हुसैन के साथियों का पानी बन्द कर दिया गया। 10वीं मुहर्रम को तीन दिन की भूख व प्यास में यह युद्ध जिस घमासान से आरम्भ हुआ और जिस बहादुरी और निर्भयता से इन भूखे और प्यासों ने सैकड़ों का सामना किया उसका नमूना संसार में कठिनाई से मिलेगा। इतिहास पुकार रहा है कि हुसैन[अ०] की सेना का हर एक मरने वाला बीसों बल्कि सैकड़ों को मार कर मरता था। यह युद्ध प्रातःकाल से आरम्भ होकर निकटतम चार बजे शाम तक होता रहा। पहले तो मित्रों में से एक-एक रण-क्षेत्र में जाकर सैकड़ों का सामना करके बैरियों को काटकर अन्त में स्वयं शहीद हो गए। उसके पश्चात कुटुम्ब की बारी आई, भाई, भतीजे, भाँजे, बेटे सभी अपने प्राणों को अर्पण करने लगे जिनमें बहुधा युवक और बालक थे। हुसैन[अ०] का भतीजा 'क़ासिम' इतना छोटा था कि

हुसैन[अ०] ने स्वयं अपने हाथों से घोड़े पर बिठाया और एक छोटी सी तलवार 'क़ासिम' के हाथ में देकर मरने के लिए भेज दिया। बत्तीस वर्ष का भाई वीर 'अब्बास' भी बहादुरी दिखाकर नहर के किनारे शहीद हो गया। 18 साल की कमाई 'अली अकबर' सीने पर बर्छी खाकर सत्यता की भेंट चढ़ गए। अस्र (शाम) तक हुसैन अपनी कुल पूँजी लुटा चुके। सब साथी और भाई-बन्द गर्दनें कटाए जलती हुई रेत पर मृत्यु की निद्रा से सो रहे थे। हुसैन[अ०] ने अपने अकेले होने का ध्यान करके सहायता के लिए एक आवाज़ लगाई। जिसके पीछे ही हुसैन को अपने डेरों से बीबियों के रोने और पीटने की आवाज़ सुनाई पड़ी। डेरे की ओर रवाना हुए यहाँ आकर अजब हालत देखी। उनका छः महीने का एक छोटा बच्चा 'अली असग़र' जिसकी माता का दूध भी सूख गया था वह भी सारे कुटुम्ब परिवार वालों के साथ भूखा व प्यासा झूले में पड़ा दम तोड़ रहा था। पिता ने पुत्र की हालत देखी और दिल भर आया। गोद में उठा लिया और सेना के सम्मुख लाकर सबको उसकी हालत दिखाई और उसके लिए एक बूँद पानी माँगा। इसी दृश्य को देखकर सारी सेना में हलचल पड़ गई और हर एक रोने लगा, मगर एक कठोर हृदय मनुष्य ने जिसका नाम ''हुर्मुला'' था ऐसा तीर ताक कर मारा जो ठीक 'अली असग़र' के गले पर लगा और यह बच्चा तड़प कर बाप के हाथों पर मर गया। हुसैन[अ०] ने उसके गले का रक्त चुल्लू में लेकर अपने मुँह में मल लिया और कहा कि इस प्रकार ईश्वर के सम्मुख जाऊँगा। हुसैन[अ०] जब यह बलिदान भी कर चुके तो स्वयं मरने के लिए तैयार होकर रणक्षेत्र में जाने लगे। मगर बेचारी स्त्रियों ने चारो ओर से आकर उन्हें घेर लिया। उनकी बहन और बेटियाँ किसी प्रकार उन्हें मरने न जाने देती थीं। हुसैन[अ०] ने उन्हें समझाना आरम्भ किया और कहा कि सन्तोष करो। जब साँच पर आँच आती है तो बड़ी से बड़ी भेंट चढ़ानी पड़ती है। यहाँ तक कि तीन दिन का भूखा प्यासा हुसैन[अ०] जिनके सब कुटुम्ब परिवार आँखों के सामने शहीद हो चुके थे, बीबियों से रुख़सत होकर रणक्षेत्र में आए। संसार में बहुत से बहादुर हुए हैं मगर हुसैन[अ०] का जीवन अपने रंग में बेमिसाल है। जिसके दिल पर उसके प्यारे और मित्रों के मर जाने के बहत्तर दाग़ थे, जिसके शरीर की रगें भूख, प्यास से खिंच रही थीं, जिसकी आँखों की रौशनी नष्ट हो चुकी, जिसके होश व हवास का इस परेशानी में भी क़ायम रहना आश्चर्य से ख़ाली नहीं, उससे युद्ध ठानी और उन्होंने आश्चर्यजनक बहादुरी दिखाई। सैकड़ों की संख्या में मार डाला। रक्त की नदियाँ बहा दीं। लाशों के ढेर लगा दिये। मगर कब तक एक अकेला आदमी इतनी बड़ी सेना का सामना कर सकता था। अन्त को घायल शेर घोड़े से पृथ्वी पर गिरा दिया गया। पापी शत्रुओं ने चारों ओर से घेर मार डाला, आह!

शहादत के पश्चात

हुसैन[अ०] की शहादत के बाद लाचार विधवायें और तमाम बच्चे अपने-अपने वारिसों को ख़ेमे में रो-पीट रहे थे। हत्यारों ने उन ख़ेमों में आग लगा दी। स्त्रियाँ घबरा-घबरा कर जान बचाने के लिए ख़ेमे से निकल पड़ीं। बैरियों ने उन्हें क़ैद करके रस्सी में बाँधा और ऊँटों पर बिठाकर कर्बला से कूफ़ा और कूफ़ा से मुल्क शाम 'यज़ीद' के सिंहासन तक ले गए। यज़ीद के हुक्म से यह लोग बहुत दिनों तक कड़ी क़ैद में रखे गए। इनको न तो ठण्डा जल ही मिलता था, न तो पेट भर भेजन ही मिलता था। दिन की धूप और रात की ओस ने सभों की सूरतें बदल दी थीं। लेकिन बहादुर और लज्जाशील, वह स्त्रियाँ थीं जिन्होंने तमाम कठिनाइयाँ झेली, मगर सत्यता के पथ से एक तिल पग नहीं हटाया।

हुसैन[अ०] की दी हुई शिक्षा और संसार का कर्तव्य

मित्रों! हुसैन का घर से बेघर होना अपने छोटे-छोटे बच्चों और स्त्रियों को संग लेकर बिना दाना पानी मरुस्थल की ख़ाक छानना कर्बला में 3 दिन की भूख और प्यास में उनका और उनके छोटे-छोटे बच्चों की परीक्षा होनी। प्रिय मित्रों तथा प्रिय बन्धुओं! प्यारे बेटों का नेत्रों के सम्मुख शहीद होना, घर बार का लुटना,

(बक़िया....... पेज 26 पर)

ज़िल्लत की ज़िन्दगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर

जनाब पंडित व्यास देव मिश्रा साहब, जज, हाईकोर्ट, दिल्ली

"ज़िल्लत की ज़िन्दगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है।" ये है इमाम हुसैन[अ०] की वह बात जिस पर कर्बला की जंग हुई। और यही वह बात है जिस पर दुनिया आख़िर तक चलती रहेगी।

इसमें दो चीज़ें बहुत ग़ौर करने वाली हैं। यानी इज़्ज़त क्या है और ज़िल्लत क्या है? आम दुनिया के नज़दीक इज़्ज़त वह है जो आम तौर से इन्सान दूसरों को देख कर कहा करते हैं कि फ़लां शख़्स माल और दौलत रखता है, बड़े मरतबे वाला है, शान और शौकत का मालिक है और बड़ा ही इज़्ज़त वाला है। उनकी सोच ये है कि बग़ैर इन चीज़ों के इज़्ज़त नहीं मिलती। मगर ये इन्सान की बहुत बड़ी ग़लती है कि वह माद्दी (Meterial) और ख़त्म हो जाने वाली चीज़ों को इज़्ज़त का नाम देता है। हक़ीक़त में इज़्ज़त वह है जो ख़ुदा ख़ुद देता है और यही इज़्ज़त कभी न ख़त्म होने वाली है। अगर एक मालदार को ख़ुदा ने इज़्ज़त नहीं दी तो यक़ीनन वह हमेशा ज़लील रहेगा। बस आप इस बात को सामने रखते हुए देखें कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी ज़िन्दगी किस तरह गुज़ारी।

शुरु से लेकर आज तक ज़िन्दगी का मक़सद इसी क़ौल के मुताबिक़ हासिल किया जाता रहा है। अगर इज़्ज़त सिर्फ़ माल और दौलत, हुकूमत और शोहरत से होती तो ख़ुदा के रसूल[स०] अपने लिए बड़े-बड़े महल बनाते, दौलत इकटठा करते, और क़ीमती कपड़े पहनते, मगर आप देखेंगे कि उन्होंने ऐसा नहीं किया, और फ़क़ीरों वाली ज़िन्दगी गुज़ारी। दुनिया ने ज़लील करना चाहा और दुश्मनों नें रास्ता चलते वक़्त हज़रत[स०] पर कूड़ा-करकट फेंका और ज़लील करना चाहा। मगर इन बेकार की बातों से आपकी इज़्ज़त में कुछ फ़र्क़ न आया बल्कि आपकी इज़्ज़तत और बढ़ गयी और दुश्मन ज़लील होते रहे।

हज़रत अली[अ०] की भी मिसाल लीजिए। जब बैतुलमाल में कुछ रुपया जमा होता, अपने ग़ुलाम से कहते जाओ सब कुछ ग़रीबों और मिस्कीनों को बाट दो। और आप ख़ुद अल्लाह के ज़िक्र में लग जाते। जब ग़ुलाम सब कुछ बाट कर आपको ख़बर देता तो शुक्र का सजदा अदा करते। उनकी नज़र में माल और दौलत की बस इतनी ही क़दर थी कि वह जल्दी से जल्दी उसके हक़दारों तक पहुँचा दें और ख़ुदा के दरबार में इज़्ज़त वाले हों।

इसीलिए अल्लाह के रसूल[स०] ने हमेशा यही दावत दी कि दुनियावी इज़्ज़त और सरदारी की चाहत न होनी चाहिए, हमेशा सीधे रास्ते पर चलना चाहिए ताकि मरने के बाद अल्लाह इज़्ज़त बख़्शे। आपने अपने अख़लाक़ और किरदार से हिदायत की। मगर ख़ुदा के रसूल[स०] की आँख बन्द होते ही दुनिया उनके बताये हुए रास्ते को भूल गयी और रसूल[स०] के अहलेबैत[अ०] पर मुसीबतों की शुरुआत हो गई। वह मस्जिद जिसमें पनाह मिलनी चाहिए, उसी में रसूल[स०] के जानशीन हज़रत अली[अ०] को शहीद कर दिया गया। हज़रत इमाम हसन[अ०] ने पूरी हुकूमत और बादशाहत को ठुकराकर लड़ाई को ख़त्म कर दिया और सुल्ह करके अम्न क़ायम किया। इसके बाद भी उन्हें ज़हर देकर शहीद कर दिया गया। और किसी ने इस जुर्म की तहक़ीक़ न की। बात आई-गई हो गई, राज़, राज़ में रह गया।

अब इमाम हुसैन[अ०] की बारी आई, कुछ लोगों का ख़याल है कि इमाम हुसैन[अ०] ने हुकूमत के लिए लड़ाई की। ये ख़याल बिलकुल ग़लत और बेबुनियाद है। अगर इस बात के लिए लड़ाई करना होती तो उस वक़्त लड़ाई शुरु कर देते जब इमाम हसन[अ०] के जनाज़े पर तीर बरसाए जा रहे थे मगर न उस वक़्त जंग की और

न उस वक़्त तलवार उठायी जब मुआविया ने सुल्ह की शर्त के ख़िलाफ़ किया था, इमाम ख़ामोश रहे और भाई की सुल्ह को क़ायम रखा।

कुछ लोगों का कहना है कि जब इमाम हुसैन[अ०] जंग के ख़िलाफ़ थे तो ऐसी जगह और ऐसे लोगों और ऐसे बादशाह की हुकूमत में क्यों गए जहाँ उनकी जान को ख़तरा था और जिन लोगों ने उनके बाप और बड़े भाई को शहीद कर दिया था ऐसी हालत में सही यही था कि इमाम हुसैन[अ०] किसी और तरफ चले जाते।

ऐसे लोगों के इन एतेराज़ों का जवाब इतना ही काफ़ी है कि आप ऐसी मौत मरना चाहते थे जिसकी जानकारी हर एक को हो जाए कि किसने शहीद किया। और ज़ुल्म किस की तरफ़ से हुआ, क्योंकि इससे पहले हज़रत अली[अ०] की शहादत हुई, इमाम हसन[अ०] शहीद हुए, मगर कोई पूछताछ नहीं हुई। किसी ने सुराग़ लगाने की तकलीफ़ नहीं उठायी और इन वाक़िआत पर पर्दा डाल दिया गया। इमाम हुसैन[अ०] ने जंग के मैदान में शहीद होकर ये ज़ाहिर कर दिया कि अली[अ०] व हसन[अ०] की शहादत करने वाले कौन थे। हुसैन[अ०] की ऐसी शहादत हुई कि दुनिया क़यामत तक उसे भुला नहीं सकती। ज़ालिम हमेशा ज़ालिम और मज़लूम हमेशा मज़लूम रहेगा और यहीं से हक़ व बातिल की हदें क़ायम हो गईं।

दूसरी लड़ाईयों में आम तौर पर वह जाते थे जो माले ग़नीमत के चाहने वाले होते थे। और जहाँ माल और दौलत की उम्मीद न होती थी, भाग जाते थे लेकिन इमाम ने अपने ऐसे अस्हाब चुने कि जो सिर्फ़ ख़ुदा की ख़ुशी के चाहने वाले थे। और अपनी जानों को इमाम के क़दमों पर क़ुर्बान करना, अपनी ज़िन्दगी का मक़सद समझते थे। दुनिया लड़ाई के लिए फ़ौज तैयार करती है और सिपाहियों को तरह-तरह की लालच दी जाती है। लेकिन इमाम की फ़ौज इससे मुख़तलिफ़ थी। उनमें बच्चे भी थे, उनमें औरतें भी थीं, उनमें नौजवान भी थे और उनमें बूढ़े भी थे। और इमाम हर मंज़िल पर उनसे कहते जाते थे कि मैं तो क़त्ल होने जा रहा हूँ लोग मेरे ख़ून के प्यासे हैं, तुम लोग वापस चले जाओ, और मेरे साथ ख़तरे में न पड़ो। मगर इमाम के चाहने वाले जानते थे कि किस तरह इज़्ज़त मिलेगी और ख़ुदा की रिज़ा किधर है। जितना इमाम अपनी शहादत की ख़बर देते थे उतना ही जाँबाज़ों की शहादत का शौक़ ज़ोर मारता था और वह मौत को लब्बैक कहते थे।

बहुत से लोग ये कह देते हैं कि इमाम हुसैन[अ०] सियासत नहीं जानते थे। हाँ जिसे हम सियासत समझते हैं उसे वाक़ई आप नहीं जानते थे हमारी सियासत ये है कि धोका किया जाए, मगर इमाम आली मक़ाम उन सभी बुराईयों और इस तरह की सियासत को बुरा जानते थे। वह अपने मक़सद में हर क़दम पर बराबर कामयाब होते रहे। आपकी सियासत क्या थी ये कि हक़ और बातिल में हमेशा के लिए फ़र्क़ हो जाए। बातिल के सामने न सर झुका है और न झुके। इसके उलट यज़ीद की सियासत क्या थी। यही कि इमाम उसके हाथ पर बैअत कर लें, ताकि हरामकारी, फ़रेब और धोका, ज़िनाकारी और ऐय्याशी, सब हलाल और बिल्कुल मज़हब हो जाएं।

इस मौक़े पर इस दुनियावी सियासत को हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ख़ूब जानते थे। आप अपने साथियों के साथ बढ़ रहे थे। पूछा गया कहाँ जा रहे हैं। आपने फ़रमाया कि लोगों ने दावत दी है कि वह हक़ का साथ देंगे और बातिल को छोड़ देंगे।

अगर इमाम इस दावत को क़ुबूल न करते तो आज तक लोग ये कहते कि कैसे इमाम थे, कि बराबर ख़त भेजते जा रहे थे कि आकर अपने नाना के दीन को फैलाएं लेकिन वह अपने ख़ानदान और अपनी जान बचाने की फ़िक्र में थे, और मुसलमानों की दावत क़ुबूल न की।

मगर इमाम जानते थे कि हक़ का रास्ता क्या हैं और उस पर चलने के लिए जानें देना होंगी। और ये यक़ीन रखते थे कि अगर इस रास्ते में अपना पूरा ख़ानदान क़ुर्बान हो जाए और भरा घर उजड़ जाए तो भी कोई हर्ज नहीं। मगर हक़ का रास्ता दुनिया के सामने आ जाए, क्या कहना हुसैन[अ०] की सियासत का, दुश्मन अपने घोड़ों के साथ प्यास की सख़्ती से टूट कर इमाम के सामने आता है। और ऐसे ही मौक़े पर दुनिया की सियासत वाले दुश्मन को हरा देते हैं। बल्कि अगर ये

मालूम हो गया कि फ़लाँ जगह पर घिरा हुआ है तो खाना पानी भी बन्द कर देते हैं ताकि या तो वह मानने वाला हो जाए या तड़प-तड़प कर मर जाए। मगर वाह रे हुसैनअ॰ की सियासत, दुश्मन को भी पानी पिलाया और दुश्मन के घोड़ों को भी पानी से सैराब किया। ये थी हुसैनअ॰ की सियासत मगर एक यज़ीदी सियासत को भी देख लीजिए। सातवीं से इमाम पर इमाम के घर वालों पर और साथियों पर पानी बन्द है। बड़ी फौज ने दरिया पर घेरा डाल रखा है। सवाल ये है कि बैअत करो। या लड़ाई के लिए तैयार हो जाओ उधर 30 हज़ार और इधर गिने गिनाए सिर्फ़ 72 जिनमें एक छः महीने का भी बच्चा है।

आख़िर आशूर की रात आई। इमामअ॰ ने एक रात की छूट अल्लाह की इबादत के लिए मांगी। सभी जान देने वालों, अज़ीज़ों और दोस्तों को इकटठा किया। और आशूर की मुसीबतों से उन्हें फिर ख़बरादार किया। और ख़्वाहिश की कि जो जाना चाहें वह चला जाय बल्कि बैअत भी उठा ली ताकि जाने वालों में हिचक न हो। जब कोई न गया तो शमा बुझा दी गयी और कहा कि इस रात के अंधेरे में जो जाना चाहे चला जाए। मगर कोई न गया और सब ने कहा कि एक बार क्या अगर सत्तर बार भी क़त्ल किये जाएं। और ज़िन्दा हों तो भी यह जान इन्ही क़दमों पर निछावर करेंगे। ये थी हुसैनअ॰ की सियासत जो दिलों पर हुकूमत कर रही थी कब दुनिया में कोई ऐसी मिसाल मिलती है। मैं सच कहता हूँ कि अगर यज़ीद अपनी फौज़ से कहता कि तुम सब को कल मर जाना है और यक़ीनी मर जाना है और जिसका जी चाहे वह ख़ुशी से चला जाए मुझे बहाना नहीं है तो यक़ीनन चिराग़ बुझाने की ज़रूरत न पड़ती। और पूरी फ़ौज जान बचाकर भाग जाती।

हुसैनअ॰ का मक़सद इस्लाम को बाक़ी रखना था, यज़ीद की बैअत गवारा न की। इज़्ज़त की मौत को ज़िल्लत की ज़िन्दगी पर तरजीह दी। इसी उसूल पर क़ायम रहे और इसी उसूल पर क़ायम रहने की दावत दी।

इस शहादत ने दुनिया पर ये खोल दिया कि हक़ के रास्ते पर कौन है और बातिल के रास्ते पर कौन। और आज दुनिया की हर क़ौम हुसैनअ॰ को सच्चे रास्ते का शहीद मानती है। और उनके इस क़ौल ''ज़िल्लत की ज़िन्दगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है'' पर अमल करने को अपना ईमान और असल इन्सानियत समझती है।

✦✦✦

(बक़िया....... हुसैनअ॰ कौन थे?)

दुखी स्त्रियों और लावारिस बच्चों का क़ैद होना एक दुख भरी कहानी है, जिसे सुनकर रो देना और मुसीबत की दास्तान पर चार आँसू बहा लेना मनुष्यत्व का कर्तव्य है। जिस आँख से किसी के दुख पर थोड़े आँसू न निकलें, जो दिल किसी के दुख दर्द पर न पसीजे, वह मनुष्य कब हो सकता है। हर मनुष्य इन घटनाओं को सुनकर अवश्य दुखी होगा। हुसैनअ॰ और साथियों के साथ प्रेम और उनके बैरियों से घृणा करेगा। मगर भाइयों यह भी विचार करो कि 'हुसैनअ॰' ने अपना और अपने मित्रों, अज़ीज़ों और गोद के पाले बच्चों का गला किस बात के लिए कटा दिया।

मित्रों! हुसैनअ॰ ने कर्बला के रणक्षेत्र में बहुत सी शिक्षाएं दी हैं। उन्होंने बतलाया कि सम्मान पूर्वक मृत्यु अपमानजनक जीवन से कहीं बढ़कर है। उन्होंने सिखाया कि सत्यता, ईमानदारी और मनुष्यत्व के लिए प्राण अर्पण कर देना ही जीवन है। यह बताया कि कठिनाइयों और दुखों में दृढ़ रहना और किसी से न घबराना बहादुरी का जौहर है। अन्यायी अत्याचारी का जड़ से खोदकर फेंक देना किन अवसरों पर मनुष्य का कर्तव्य है। उन्होंने सिखाया कि किस प्रकार पाप, बुराई और अन्याय की शक्तियों का नाश किया जाता है। धार्मिक सुशीलता और ईश्वरभक्ति में सर कटा देना महात्माओं का कर्तव्य है।

संसार के सम्मुख किस प्रकार आत्मा का झण्डा ऊँचा किया जाता है। हुसैनअ॰ ने यह भी शिक्षा दी कि जब मनुष्यत्व और सदाचार पर कठिन समय आ पड़े, जब सत्यता को झूठ दबाना चाहे तो बैरियों की अधिकता और शक्ति और अपनी कमी व कमज़ोरी पर ध्यान न देना चाहिए। भाइयों! ये हुसैन की स्वर्णअंकित शिक्षाएं हैं। जो संसार के हर मनुष्य के लिए पालन करना आवश्यक है। हुसैनअ॰ केवल मुसलमानों ही के नहीं किन्तु हमारे जगत गुरु हैं। उनकी कथा का पाठ करना हर धर्मी का कर्तव्य होना चाहिए। प्यारे मित्रों यदि इन सुन्दर शिक्षाओं का पालन करना चाहते हो, यदि ईश्वर भक्ति की शिक्षा लेना हो, तो आओ और सब मिल कर संगठन के प्लेटफार्म पर इकटठे होकर जगत स्वामी मुहम्मदस॰ के नाती हुसैनअ॰ के शरण में आओ और ईश्वर भक्ति मेल-जोल, प्रेम सदाचार की शिक्षा ग्रहण करो। ✦✦✦

पर्दे की हिफ़ाज़त.....कर्बला में

असदुल उलमा मौलाना सैय्यद असद अली साहब क़िब्ला, इलाहाबाद

दर्सगाहे कर्बला जहाँ इन्सानियत के सभी हिस्सों के लिए एक बेमिसाल और सबसे ऊँची अमली दर्सगाह है वहाँ पर्दे के ज़रूरत और अहमियत को भी मेराजे कमाल पर दिखाने के लिए काफी है।

क़यामत की गर्मी, लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान, गर्मी, तपिश, लू, सूरज की तेज़ी दरिया से दूर इमाम ख़ेमें लगवा रहे हैं बहुत ही एहतेमाम और ग़ौर और फ़िक्र के साथ ऐसी जगह तलाश की जा रही है जहाँ पाकदामन बीबियों की इज़्ज़त की हिफ़ाज़त हो सके और इसको भी कम समझा जाता है ख़ेमे के चारों तरफ ख़न्दक़ खोदने का हुक्म दिया जाता है ऐसे माहौल में ऐसे हालात में ऐसे मौसम में प्यास का ख़याल कम है पर्दे का ज़्यादा है।

ये ख़याल उस वक़्त भी जब सब मौजूद हैं और उस वक़्त भी जब कोई नहीं रह गया जेहाद में लगे हुए हैं, दुश्मनों को भगा कर फ़ुरात के साहिल पर पहुँच गये घोड़े को दरिया में डाल दिया है घोड़े से फरमाते हैं कि तू भी प्यासा है और मैं भी प्यासा हूँ तू पानी पी ले घोड़े की लगाम को ढीला किया और उसको इतमिनान दिलाने के लिए चुल्लू में पानी लिया कि एक झूठा बोला कि आप इधर हैं और उधर अहले हरम की तरफ फौज के हमले का रुख़ है, हज़रत ने पानी चुल्लू से फेंक दिया और फ़ौरन ख़ेमे की तरफ वापस हो गये।

इमाम जानते थे कि ऐसा नहीं है, मगर औरतों की अज़मत और पर्दे की अहमियत और ज़रूरत पर रौशनी डालना मक़सद था। इसी तरह आप जेहाद करते हुए जब तक़रीबन दो हज़ार लोगों को जहन्नम भेज चुके तो साद के लड़के ने लोगों को हिम्मत दिलाना शुरु की और कहा तुम लोगों को कुछ पता भी है किस से लड़ते हो, अली[अ०] के लाल का मुक़ाबला है इसके बाद उसने तीर चलाने वालों को हुक्म दिया कि चारो तरफ से घेर कर तीरों की बारिश करो उस वक़्त वह फौजी इमाम और उनके अहले हरम के बीच आ गये और तीरों की बारिश होने लगी इमाम उन बीच में आने वालों को बर्दाश्त न कर सके और आले मुहम्मद[स०] के दुश्मनों को अहले हरम के ख़ेमों के इतने क़रीब न देख सके फ़ौरन पुकार कर फरमाया ऐ अबूसुफ़यान की औलाद के मानने वालो तुम्हारी ग़ैरत और हमियत क्या हो गयी औरतों से तुमको क्या मतलब मुझ से लड़ो और जब तक मैं ज़िन्दा हूँ अहले हरम से मत भिड़ो।

और उस वक़्ते देखिये जब इमाम घोड़े की पीठ से कर्बला की ज़मीन पर आ गये हैं हज़ारों ज़ख़्म जिस्म पर और बहत्तर दाग़ दिल पर, ज़ालिम आपका सर अलग करना चाहते हैं मगर हिम्मत नहीं पड़ती क़रीब जा-जाकर वापस भाग आते हैं कुछ देर के बाद इम्तिहान के तौर पर ये जानने के लिए कि ज़िन्दा हैं या नहीं ये हुक्म दिया गया कि फौज का रुख़ अहले हरम के ख़ेमों की तरफ़ करके बढ़ो मालूम हो जायगा। हुसैन[अ०] ने जिस वक़्त अहले हरम के ख़ेमों की तरफ जाने की आहट महसूस की कोहनियों पर ज़ोर देकर सर उठाया और फ़रमाया अभी मैं ज़िन्दा हूँ इधर आओ।

पर्दे की अहमियत को जिस शान से कर्बला में इस्मत व तहारत के चाहने वालों ने पेश किया उसकी मिसाल वह ख़ुद आप हैं। माओं को बेटों ने रुख़सत कर दिया, बहनों ने भाईयों को रुख़सत कर दिया, फूफियों ने भतीजों को रुख़सत कर दिया, ख़ालाओं ने भांजों को रुख़सत कर दिया और बीबियों ने अपने वारिसों को

रुख़सत कर दिया वहाँ जहाँ से कोई जाने वाला ज़िन्दा वापस नहीं आया लेकिन रुख़सत के वक़्त किसी बीबी ने पर्दे की हदों से बाहर क़दम नहीं रखा और जब इन जाने वालों की आख़िरी आवाज़ आयी तब भी पर्दे की हदों का ख़याल रखा और जब उनकी लाशें ख़ेमें में आने लगीं तो किसी बीबी ने ख़ेमे से बाहर निकल कर उनका इस्तेक़बाल नहीं किया जो कुछ नौहा और मातम हुआ ख़ेमें के अन्दर हुआ।

यहाँ तक कि जब वह क़यामत का वक़्त आ गया कि कर्बला का ताजदार ज़मीन पर दुश्मनों के चंगुल में था और हर एक बढ़-बढ़ कर वार कर रहा था तो उस वक़्त भी अहले हरम की एक-एक फ़र्द ने पर्दे का ख़याल रखना अपना फ़र्ज़ समझा उस वक़्त अगर बीबियाँ तलवार लेकर आ जातीं तो इतनी आसानी से हुसैन[अ०] का सर अलग नहीं हो सकता था।

सब शहीद हो गये, हुसैन[अ०] का सर नेज़े पर उठ चुका जीत के ढोल बजने लगे और पूरी कायनात में हंगामा हो गया मगर अहले हरम को हुसैन[अ०] जहाँ-जहाँ अपने-अपने ख़ेमों में छोड़ गये थे वह सब वहीं पर रहे और उस वक़्त तक रहे जब तक आग नहीं लगायी गयी और खुद आग लगाना इस बात का सुबूत है कि अहले हरम ख़ेमे में मौजूद थे वरना आग क्यों लगायी जाती और आग लगाने के बाद भी जब तक आख़िरी ख़ेमा बाक़ी रहा बाहर नहीं निकलीं और आख़िरी ख़ेमे में आग लग जाने के बाद भी इमामे वक़्त की इजाज़त का इन्तिज़ार करती रहीं और पर्दे का हुक्म इमाम के हुक्म से ख़त्म हुआ तब बाहर निकलीं। ये है कर्बला जैसे माहौल में पर्दे की हिफ़ाज़त, उम्मीद है मिल्लत की बहनें ध्यान देंगी।



जै़नब (स०) सी बहन देखी न अब्बास (अ०) सा भाई

मुफ़क्किरे इस्लाम डाक्टर मौलाना सै० कल्बे सादिक़ साहब

हक़ीक़त ये है कि इन्सान के इतिहास में भाइयों के लिए नाज़ के क़ाबिल बहनें भी गुज़री हैं और गर्वपूँजी भाई भी लेकिन जिस तरह इमाम हुसैन[अ०] ने आशूर से पहले रात को खुद फ़रमाया किः

"जैसे साथी मुझे मिले किसी को न मिले" इसी तरह ये भी एक हक़ीक़त है कि दुनिया में किसी को न ज़ैनब[अ०] की ऐसी बहन मिली, न अब्बास[अ०] का ऐसा भाई।

ज़ैनब[अ०] को हुसैन[अ०] से वही लगाव है जो खुद हुसैन[अ०] को रसूल[स०] से था। जिस तरह हुसैन[अ०] ने अपनी क़ुर्बानी देकर रसूल[स०] और रसूल[स०] के मिशन को ज़िन्दा कर दिया, उसी तरह हुसैन[अ०] की इस बहन ने कूफ़ा और शाम के भरे बाज़ारों और सजे-बने दरबारों में अपने खुतबों (भाषणों) के ज़रिये हुसैन[अ०] और हुसैनी मिशन को ज़िन्दा कर दिया और अब्बास[अ०] इब्ने अली[अ०] ने अपनी तारीख़ी अलमदारी, बेमिसाल बहादुरी, नाक़ाबिले तसव्वुर वफ़ा और इख़लास, के ज़रिये अली[अ०] की चाह की लाज रख ली।

अल्लाह ने हर इन्सान की तरह इस गुनाहगार को भी दो आँखें दी हैं। इस साल मैंने इन दो आँखों से दो मन्ज़र देखे। एक का ताल्लुक़ हुसैन[अ०] की बहन से है एक का ताल्लुक़ हुसैन[अ०] के भाई और अलमदार से। मैंने इस साल अमरीका के सफ़र में एक सख़्त मुश्किल से दोचार होने पर ये नज़र (मनौती) मानी थी कि अल्लाह ने इस मुश्किल को हल कर दिया तो मैं शाम में हमज़्तुल हुसैन (जनाब ज़ैनब) की ज़ियारत करूँगा। करीम रब ने अपने फ़ज़्लो करम से उसके सदक़े मेरी मुश्किल हल कर दी। इसलिए मैं अप्रैल की 10 तारीख़ को नज़्र के पूरे करने के लिए शाम रवाना हो गया।

मैं सन् 65 में शाम गया था। उस वक़्त नज़रें न थीं और एतेबार वाली निगाह न थी। अब सूरते हाल दूसरी थी अब मैं हालात को देख भी सकता था और हालात का जाएज़ा भी कर सकता था।

आप हज़रात को मालूम है कि शाम वह मुल्क है जिसकी पहली ईंट अहलेबैत की दुश्मनी पर रखी गई थी। ये इस्लामी इतिहास के ख़बीस तरीन हुक्मरानों का मुल्क था। यहाँ के मिंबरों से रसूल के अहलेबैत[अ०] को बुरा-भला कहा जाता था और उसमें कितनी शिद्दत थी उसका अन्दाज़ा आप इस तारीख़ी वाक़िए से कर सकते हैं:-

हज़रत अमीरुलमोमिनीन[अ०] की ज़ियारत के बाद हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास शाम तशरीफ़ ले गये। अमीरे शाम इब्ने अब्बास को अपना अज़ीम ख़ज़ाना दिखाने ले गए जो सोने-चाँदी के सिक्कों, हीरे-जवाहरात और क़ीमती चीज़ों से पटा पड़ा था। अमीरे शाम ने अली[अ०] के शार्गिद को ख़रीदना चाहा और कहा इसमें जो पसन्द आए, उठा लो वो तुम्हारा है। इब्ने अब्बास ने इस हराम माल में हाथ भी लगाना पसन्द न किया। तो अमीरे शाम ने कहा तुम जो चाहो मैं तुम्हें दे दूँगा। तुम्हें मेरी सख़ावत (दानवीरता) का अन्दाज़ा नहीं है।

इब्ने अब्बास ने कहा "जो माँगूं दे दोगे?" अमीरे शाम ने इक़रार किया तो कहा, "मैं तुम से एक चीज़ माँगता हूँ। मुझे हीरे-जवाहरात नहीं चाहिएं। मिंबरों से अली[अ०] पर तबर्रा (बुरा) न करो।" अमीर का चेहरा लाल हो गया और कहा "ये नहीं हो सकता। ये तो मेरे दीन (धर्म) का हिस्सा है।"

आप ग़ौर करें वह दीन कैसा दीन होगा जिसमें ''कुल्ले ईमान'' (पूर्ण-विश्वास) को बुरा-भला कहना ईमान का हिस्सा बना दिया है। बनी उमैय्या के इन ख़बीस बादशाहों के बाद शाम बनी अब्बास की हुकूमत में आ गया जो अहलेबैत[अ॰] की दुश्मनी में बनी उमैय्या से भी आगे निकल गये थे। मुख़तसर ये कि ये शाम वही है जहाँ सैकड़ों साल बराबर वह हुकूमतें रहीं, अहलेबैत[अ॰] की दुश्मनी जिनके ईमान का हिस्सा था।

मगर ये ज़ैनब की मज़लूमाना बहादुरी का मोजिज़ा नहीं तो और क्या है कि सारी दुनिया में घूमने वाले इस अहलेबैत के आशिक़ ने अपनी आँखों से ये मन्ज़र देखा कि उस वक़्त जबकि सारी दुनिया में नजदियत और वहाबियत व सऊदियत के असर सामने आ रहे है और ख़ास तौर पर कोई नाम का मुस्लिम मुल्क (सिवाए ईरान) ऐसा नहीं बचा है जहाँ वहाबियत की काली घटाएं न छायी हों। शाम वही शाम जिसकी बुनियाद ही अहलेबैत की दुश्मनी पर रखी गई थी। सिर्फ़ यही एक शाम वह मुल्क है जहाँ वहाबियत के दौर का नामो निशान नहीं है। अक्सरियत यहाँ की भी सुन्नी है लेकिन सुन्नी है, वहाबी नहीं। ये सुन्नी भी अहलेबैत के मतवाले और दीवाने हैं। पूरे मुल्क में कोई अज़ान ऐसी नहीं होती जिसका ख़ातमा रसूल[स॰] और रसूल के अहलेबैत[अ॰] पर दुरूद व सलाम के बिना हो जाए। वह शाम जहाँ ज़ैनब[स॰] नंगे सर और रस्सियों में जकड़ी हुई थीं, इसी शाम में दमिश्क़ (Damascus) के क़रीब एक पूरा टाउनशिप आबाद है जिसका नाम ही ''अस्सैय्यिदा ज़ैनब'' है। अल्लाहु अक्बर! जिस शाम में ये काएनात की शहज़ादी (अल्लाह की पनाह) बाँदी की तरह लायी गयीं थीं, आज उसी शाम में ''ज़ैनब अस्सैय्यिदा'' के नाम से जानी मानी जाती है और यक़ीनन सारी दुनिया में ये अकेला रौज़ा है जहाँ इत्तेहादे इस्लामी का ये रूह परवर (पालने वाला) मन्ज़र दिखायी देता है कि इसके एक मीनार से अहलेसुन्नत भाइयों की अज़ान होती है तो दूसरे मीनार से शिया हज़रात की अज़ान होती है, जहाँ रौज़े की इमारत के एक तरफ़ सुन्नी हज़रात की नमाज़ जमाअत होती है और दूसरी तरफ़ शिया हज़रात की नमाज़ जमाअत होती है। रौज़े के अन्दर सुन्नी और शिया ज़ाएरीन (दर्शनार्थियों) की भीड़ होती है रौज़े में जो जलाल व जमाल (तेज सौन्दर्य) है वह देखने वाला है।

शुरु में मैं ने हम्ज़तुल हुसैन का ज़िक्र किया था, इसलिए मुख़तसर सा तज़किरा इसका भी कर दूँ। दमिश्क़ से तीन सौ साठ किलोमीटर के फ़ासले पर एक मशहूर शहर हलब है। बड़ा ख़ूबसूरत और हसीन शहर है। इसमें एक शानदार मस्जिद 'मस्जिदुल हुसैन' के नाम से मारूफ़ है।

एक रिवायत की बुनियाद पर जिस वक़्त सरकार सैय्यिदुश्शोहदा[अ॰] (इमाम हुसैन[अ॰]) का मुबारक सर इस शहर में पहुँचा तो किसी शख़्स (शायद एक राहिब ने) किसी न किसी सूरत में इस सर को हासिल कर लिया। इज़्ज़त व एहतेराम से उसे लाया। मज़लूम के सर पर नौहा व मातम किया, फिर एक पत्थर पर उस सर को गुस्ल दिया और ख़ून वग़ैरा साफ़ किया। जिस पत्थर पर इस मुबारक सर को गुस्ल दिया था उस पत्थर ने उस ख़ून को अपने दामन में इस तरह महफ़ूज़ कर लिया था, जैसे इस मज़लूम के बुज़ुर्ग दादा (पितामह) हज़रत इब्राहीम[अ॰] के क़दम के निशान को काबा की तामीर के वक़्त ''मक़ामे इब्राहीम'' ने महफ़ूज़ कर लिया था। ये पत्थर तक़रीबन सवा दो फीट चौड़ा और कम से कम एक फीट मोटा होगा, ऊपर की सतह पर आधा हिस्सा कुछ ऊँचा है और आधा हिस्सा कुछ नीचा है। इस निचजे हिस्से में आज तक उस ख़ून का रंग महफ़ूज़ है। ख़ून का रंग गहरा लाल नहीं है बल्कि वैसा ही है जैसा कि पानी में ख़ून का रंग होता है। कौन पत्थरदिल इन्सान होगा जिसका दिल इस पत्थर को देख कर पानी न हो जाए। ख़ुदावन्दे करीम आप हज़रात को भी उस पाक मक़ाम की ज़ियारत का शरफ़ प्रदान फ़रमाए।

बहरहाल, आज का शाम उमवी और अब्बासी शाम से बिल्कुल अलग है। अमीरे शाम और यज़ीद की क़ब्रें गुमनाम हैं। असल में इन क़ब्रों के निशान भी फ़र्ज़ी हैं, इस लिए कि सच्ची तारीख़ी हक़ीक़त ये है कि बनी अब्बास के इन्क़ेलाब के साथ ही सभी उमवी बादशाहों के क़ब्रों को खोद डाला गया था और जो

कुछ हड्डियाँ मिली थीं उनको आग में जलाकर राख कर दिया गया था।

मगर उसी शाम में हज़रत रुक़ैय्या बिन्ते (सुपुत्री) हुसैन का शानदार रौज़ा, हज़रत सकीना बिन्ते हुसैन का रौज़ा, हज़रत उम्मे कुलसूम बिन्ते अली[अ०] का रौज़ा, अहलेबैत[अ०] के चाहने वाले और रसूल[स०] के मोअज़्ज़िन (अज़ान देने वाले) हज़रत बिलाल हबशी[रज़ि०] का रौज़ा दमिश्क़ से थोड़ी दूर पर, मरजे अज़्रद में शहीदे मवद्दत हज़रत हजर[रज़ि०] बिन अदी का रौज़ा, फिर रिक़ा में हज़रत अम्मार बिन यासिर[रज़ि०] वग़ैरा का शानदार रौज़ा। ये रौज़े इस बात का एलान कर रहे हैं कि अब शाम पर अहलेबैत[अ०] की हुकूमत है या अहलेबैत[अ०] के सच्चे साथी और शहीदों के चाहने वालों की। ये वह हुसैनी जीत है जो शरीकतुल हुसैन हज़रत ज़ैनब उलिया मक़ाम[अ०] की क़ुर्बानियों का नतीजा है। ज़ैनब[अ०] ने ख़ुदा के रास्ते में अपनी इज़्ज़त व हुरमत तक (देखने में) क़ुर्बान कर दी थी तो अल्लाह इस इज़्ज़त व हुरमत का क़यामत तक के लिए हिफ़ाज़त करने वाला बन गया। वह शहज़ादी जो शाम के बाज़ार में मासूम बच्चों के लिए एक-एक से पानी माँग रही थी उस शहज़ादी के दरबार में मुल्कों के बादशाह भिखारियों की तरह दामन फैलाए खड़े रहते हैं।

बहन के बाद अब कुछ अलफ़ाज़ भाई के बारे में। क़ुरआन के हिसाब से अल्लाह ने हिदायत के मन्सब के लिए नसलों को चुना है, उसी तरह मौलाए काएनात (सृष्टि-स्वामी) हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ०] ने अपने बेटे की मदद बल्कि इस्लाम की मदद के लिए भी नस्ल को देखा और हज़रत उम्मुल बनीन को चुना। उस उम्मुल बनीन का बेटा अब्बास बिन अली[अ०] ताजदारे (मुकुटधारी) वफ़ा, सक़्क़ा-ए-सकीना, सैदानियों का सहारा, इस्लामी फ़ौज का अलमदार (ध्वज-वाहक) हुसैन[अ०] के लिए वही हैसियत रखता था जो रसूल[स०] के लिए अली[अ०] रखते थे।

मैं 1980[ई०] तक मौला के रौज़े पर बराबर हाज़री देता रहता था। फिर सद्दामी दौर में मेरा जाना बन्द हो गया जो आज तक बन्द है और जब तक ये मलऊन वहाँ है, शायद मैं ज़ियारत से महरूम रहूँगा।

बनी हाशिम के चाँद (हज़रत अब्बास) के पाक हरम में कभी-कभी ये बात मेरे कानों तक पहुँचती कि तहख़ाने में जहाँ पाक क़ब्र है उसके बाएं या बिल्कुल क़रीब फ़ुरात की नहर अभी तक बह रही है लेकिन मैंने बदक़िस्मती से अभी उस पर संजीदगी से ग़ौर नहीं किया था।

लेकिन इस साल मैंने एक वीडियो फ़िल्म के ज़रिये से ये हैरतनाक मन्ज़र अपनी आँखों से देखा कि एक इस्लामी मुल्क की ऐसी शख़सियत की फ़रमाइश पर, जो उस वक़्त वज़ारते उज़्मा (प्रधानमन्त्री) के मन्सब पर फ़ाएज़ थी, इस सरदाब (तहख़ाने) का दरवाज़ा खोला गया था जहाँ सक़्क़ा-ए-सकीना की मुबारक क़ब्र है।

इस वीडियो फ़िल्म के ज़रिये ये मन्ज़र मैंने अपनी आँखों से देखा कि फ़ुरात नहर सक़्क़ा-ए-सकीना के क़दमों से बिल्कुल मिली हुई तेज़ी से बह रही है। पानी की गहराई तो शायद एक गज़ से ज़्यादा न हो मगर बहाव बहुत तेज़ था इस लिए जो लोग इस नहर को पार करने की हिम्मत कर सके वह भी ऊपर से लटके हुए रस्सों के सहारे नहर को पार करके पाक क़ब्र तक पहुँचे।

यहाँ ग़ौर करने वाली बात ये है कि हुसैनी लश्कर का अलमदार तो इब्ने ज़ियाद के लश्कर को ढकेलता हुआ नहर से बहुत दूर चला गया था। और ये भी एक हक़ीक़त है कि सरकारे वफ़ा को चौथे इमाम नें वहीं पर दफ़न किया जहाँ लाश मिली थी। जब ये दोनों बातें सही हैं तो क़ब्र नहर के बिल्कुल ही किनारे आज कैसे दिखायी दे रही है।

मेरी समझ में तो इसके सिवा कुछ नहीं आता कि क़ब्र को तो नहर से दूर बनी थी मगर फ़ुरात नहर ने शर्मिन्दगी की वजह से ख़ुद अपने आपको हमेशा-हमेशा के लिए इब्ने अली के क़दमों में लाकर डाल दिया है।



(उर्दू से अनुवाद)

अमर शहीदों के सरदार इमाम हुसैन[अ०]

प्रोफेसर अल्लामा अली मुहम्मद नक़वी साहब क़िब्ला, अलीगढ़
उर्दू अनुवादः बिन्ते ज़हरा नक़वी नदल हिन्दी साहेबा
हिन्दी अनुवादः मु० र० आबिद

इमाम हसन[अ०] ने ''सन्धि'' को स्ट्रेटिजी बनाया था और इमाम हुसैन[अ०] ने ''शहादत'' को, मगर ये दो अलग जंगें नहीं है बल्कि इन्हें एक ही जंग के ''दो हिस्से'' समझना चाहिए। 61[हि०] (680[ई०]) में मुआविया, यज़ीद की सूरत में उभरता है और इमाम हसन[अ०] की माहिराना स्ट्रेटिजी के नतीजे में निफ़ाक़ के चेहरे को अपनी आड़ में छुपाने वाला मुखौटा टुक्ड़े-टुक्ड़े हो जाता है। इमाम हुसैन[अ०] के लिए यही मौक़ा था कि सीधे तौर पर मुक़ाबला करके यज़ीदियत को अपने ख़ून के समन्दर में डुबोकर हमेशा के लिए ख़त्म कर दें। फिर तो उन्होंने ऐसा ही किया।

इमाम हुसैन[अ०] ने मुक़ाबला क्यों किया?

इस्लाम के सीधे रास्ते से हट जाना धीरे-धीरे इस्लाम के पैग़म्बर[स०] के बाद ही से शुरु हो गया था। ''इमामत'' को किनारे कर उसकी जगह ''ख़िलाफ़त'' ने ले ली थी मगर अमीर मुआविया के ज़माने से ''ख़िलाफ़त'' भी बदल कर ''साम्राज्य'' की शक्ल में आ गई थी और इस्लामी दुनिया में क़ैसर और किसरा का क़ानून चल पड़ा था और ये अबूसुफ़यान का बेटा और क़ैसर-किसरा के कल्चर का वारिस ''मुसलमानों के ख़लीफ़ा'' के नाम से ख़िलाफ़त की गद्दी पर क़ब्ज़ा करके एक ख़तरनाक बदलाव को जन्म दे रहा था और इस्लाम के सीने में जिहालत का ज़हर फैला रहा था और उसे ''मुहम्मदी दीन'' के नाम से पेश कर रहा था और इस बात का ख़तरा पैदा हो गया था कि कुछ ही पीढ़ियों में असल इस्लाम, ताक़ों में सज कर रह जाएगा और बुरे राज करने वालों का चाल-चलन इस्लाम का नमूना समझा जाने लगेगा।

इस ख़तरे को भांपने से समाज बिल्कुल बेपरवाह था। उस पर हालात ऐसे थे कि समाज के अन्दर ''छल'' को ''हक़'' (सत्य) पर और ''सियासत'' (राज) को ''सच्चाई'' पर जीत मिली हुई थी, ''नादानी'', ''समझदारी'' पर छायी हुई थी। इस्लामी राज के बहुत से इलाक़ों के आम लोग जो हेजाज़ से काफ़ी दूर थे, इस्लामी सच्चाई से अन्जान थे, दमिश्क़ के महल में राजगद्दी पर ठाठ से बैठने वाले ख़लीफ़ा को वह इस्लामी नमूना समझते थे और उसके ख़िलाफ़ खड़े होने को ''इस्लामी रहबर'' के ख़िलाफ़ बग़ावत समझते थे। हेजाज़, मक्का, मदीना, इराक़ और ख़ुरासान की जनता ज़्यादा जानकारी रखने के बाद भी (सरकारी) रोक वाले हालात से डरी हुई थी। एक अकेला कूफ़ा था जो शाम की हथियारों से सजी फ़ौज से मुक़ाबले को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। ''मरजसी'', ''सूफ़ी'' और ''जबरी'' जैसे नये-नये फ़िरक़े और मत अपने रंगारंग विचारों के मुताल्लिक़ जनता के सामने तरह-तरह की बातें सही ठहरा रहे थे। 61[हि०] में लगभग ऐसे ही हालात थे और जनता के ज़हनों को सुला देने की कोशिश की जा रही थी।

इमाम हुसैन[अ०] इन हालात से मुक़ाबला, दीन के मोर्चे की हिफ़ाज़त, इस्लाम की असलियत के बचाने, ज़ुल्म और ज़्यादती के मिटाने और इस्लाम को महल में

बैठे ख़लीफ़ा के पंजे से आज़ाद कराने के लिए हक़ परस्तों के साथ उठ खड़े हुए। जब हक़ वालों के लिए बातिल (अधर्म) की ताक़तों पर जीत पाना मुमकिन न था, ज़ुल्म को इस तरह रुसवा करना कि वक़्त के बहाव के साथ उसका नाम और निशान मिट जाए, जिस वक़्त फ़ौजी ताक़त से ज़ुल्म की बिसात पलटना मुमकिन न हो, उस वक़्त शहादत को अपनाना चाहिए। यानी अपनी और अपने प्यारों की जानें क़ुर्बान करके ज़ुल्म को रुसवा और ज़ालिम को नंगा करें। इसलिए इमाम हुसैन^अ॰ ने उसी तरीक़े को चुना।

अलबत्ता इमाम हुसैन^अ॰ के मुक़ाबले पर उस वक़्त तीन तरह के गिरोह और तीन अन्दाज़ की सोच थीः

1- यज़ीदीः वह लोग जो हक़ के मुक़ाबले में मोर्चाबन्द, ज़ुल्म करने और सताने वाले, ताक़त और धन वाले लोग, सरफिरे और सितम करने वाले लोगों का नमक खाने वाले।

2- नसीहत करने वाले और ढलवाँ लोगः जो समझौते, नर्मी और सुझाव की तरफ़ थे।

3- आम लोगः जो इन मामलों से बेख़बर और सिर्फ़ एक तमाशा देखने वाले थे।

तारीख़ (हिस्ट्री) में जब भी धर्म और अधर्म के बीच जंग हुई है, ये तीनों गरोह भी हमेशा पाये गये है। जो लोग ऊपर बताए गए दूसरे गरोह से जुड़े थे (यानी नसीहत करने वाले और साथी) उन्होंने इमाम हुसैन^अ॰ को नसीहत की और मश्वरा दिया कि वह सुझाव को देखते हुए काम लें, यज़ीद से समझौता कर लें, मगर इमाम हुसैन^अ॰ शहादत और क़ुर्बानी के रास्ते को तैय कर चुके थे, इसलिए वह उसी रास्ते पर आगे बढ़े और अपनी इमामत की ख़ुसूसियत को उन्होंने बाक़ी रखा।

हार में जीत

देखने में कर्बला की जंग आधे दिन में ख़त्म हो गई। सभी इन्क़ेलाबी शहीद हो गए सिवाए उन कुछ कर्बला के सन्देसियों के, जो पैग़ाम पहुँचाने की ज़िम्मेदारी का बोझ अपने कन्धों पर उठाए हुए थे। यूँ तो इन्क़ेलाबी शहीद, कर्बला में अपने ख़ून में डूबे हुए सो रहे थे मगर इन्क़ेलाब जाग चुका था। दीन पर चलने वाले मिट्टी और ख़ून में लतपथ पड़े थे, मगर दीन नजात पा चुका था। देखने में यज़ीद को जीत ज़रूर मिली थी, मगर तारीख़ की गहराई में वह एक सबसे बुरी हार खाया हुआ इन्सान था और हुसैन^अ॰ को दिखने वाली हार के रूप में हुसैन^अ॰ एक बड़ी जीत पा गये थे। मौत ने अपने हाथों से उन्हें अमर हो जाने का तोहफ़ा भेंट किया।

कर्बला में हुसैन^अ॰ और हुसैनियों के तारीख़ी कामों का नतीजा क्या हुआ? हुसैन^अ॰ हार गए या जीत पा गए?

हर आन्दोलन और हर काम की हार और जीत को उसके मक़सद की सच्चाई और उसके मक़सद के लेहाज़ से समझना चाहिए। हुसैन^अ॰ की शहादत से यज़ीद के तीन मक़सद थे। पहला मक़सद था सच की आवाज़ को ऊँचा करने वालों का गला घोंटकर सच की बोली को दबा देना, दूसरा मक़सद था उमैयावी सिस्टम और अबूसुफ़यान के ख़ानदान की हर मुख़ालफ़त को कुचल देना, और तीसरा मक़सद था "मुहम्मद^स॰ के इस्लाम" से अबूसुफ़यान की जगह बदला लेना। मगर इन में से उसका कोई मक़सद भी पूरा न हो सका और हुसैन^अ॰ के ख़ून ने सत्य को ऊँचा करने वालों की गुहार और अनशन को तगड़ा बना दिया और हुसैन^अ॰ की शहादत उमैया राज के लिए ज़लज़ला, उमवी सियासी ताक़तों को सौ साल से भी कम मुद्दत में मिटाने और तारीख़ में यज़ीदियत को ज़लील और रुसवा करने का कारण बन गई और सत्य की आवाज़ ऊँची से ऊँची होती गई।

इस के मुक़ाबले में इमाम हुसैन^अ॰ का मक़सद "सच्चे इस्लाम" को "राज वाले इस्लाम" से अलग कर देना था जिससे यज़ीदियों के कर्म को एक बुरे राजा का चलन ही समझा जाए, इस पर इस्लामी नमूने का धोका न हो। इमाम हुसैन^अ॰ ने अपने इरादे और अपने मक़सद को ताक़त दी और इस्लामी सरहद पर अपने "ख़ून" की गहरी और अनमिट लकीर खीच कर इस्लाम को शासकों के चलन से अलग कर दिया। बहुत से मुसलमान यज़ीद से पहले के ख़लीफ़ाओं के चाल-चलन को "इस्लामी नमूना" और "सनद" (प्रमाण) समझते हैं, मगर हुसैन^अ॰ की क़ुर्बानी ने यज़ीद और दूसरे राज

करने वालों के चाल-चलन और मिसाली इस्लामी चलन के बीच जो पूरब-पच्छिम की दूरी थी, उसे सूरज की तरह चमका दिया, यहाँ तक कि अहलेसुन्नत भी यज़ीद और बाद के ख़लीफ़ाओं के चाल-चलन को भरोसे वाला नहीं मानते।

इमाम हुसैन[अ०] का मक़सद तारीख़ में यज़ीद को रुसवा करना, इस्लाम की सच्चाई की हिफ़ाज़त और इस्लाम के सच्चे पैग़ाम को अमानत के तौर पर तारीख़ के हवाले कर देना था। हम देखते हैं कि यज़ीद अपने किसी मक़सद में भी कामयाब न हो सका जबकि हुसैन[अ०] अपनी शहादत के ज़रिये अपने हर मक़सद में कामयाब रहे और ये इस बात का सब से बड़ा सुबूत है कि कर्बला की जंग में जिसे सबसे महान जीत मिली वह हुसैन[अ०] थे और जिसे सबसे बुरी हार मिली और जो नेस्तोनाबूद होकर 'ना' हो गया वह यज़ीद था, यज़ीदियत थी। ये एक खुली सच्चाई है कि जो जीतता है वह अफ़सोस नहीं करता, पछताता नहीं, इसके उलट जो हारता है और नुक़सान उठाता है वह दुख और पछतावे का शिकार हो जाता है। हम तारीख़ (History) से पूछते हैं कि अफ़सोस किसको हुआ, हुसैन[अ०] या यज़ीद को? यह जंग कर्बला के रेगिस्तान में जीत और हार को तौलने की एक कसौटी हो सकती है।

अभी कर्बला वालों की जंग को ज़्यादा समय नहीं बीता था कि यज़ीद ने कर्बला के क़ैदियों को मदीना वापस भेज देने का फ़ैसला कर लिया। इसकी वजह ये थी कि वह देख रहा था कि दमिश्क़ और इस्लामी दुनिया के हर तरफ़ शहीदों के ख़ून से इन्क़ेलाब के फूल खिलने लगे हैं। कर्बला के क़ैदियों की वापसी यज़ीद के पछतावे और हार के एहसास की निशानी है। ज़ैनब[स०] और सज्जाद[अ०] की ख़्वाहिश है कि हुसैन[अ०] और कर्बला की याद हमेशा ज़िन्दा रहे, जबकि यज़ीदी चाहते हैं कि ''कर्बला'' जल्दी से जल्दी मन से मिट जाए- क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि शहीदों के ख़ून की बाढ़ में उन्हें अपनी जीत तिनके की तरह बहती और हार की ख़तरनाक लहरें अपनी तरफ़ बढ़ती हुई नज़र आ रही थीं।

कर्बला के वाक़ेओं को अभी पाँच साल भी न बीते थे कि यज़ीद जहन्नम वासिल हुआ और अपने बाप और दादा के तख़्त पर यज़ीद का बेटा मुआविया आया। उसके राज में आते ही अबूसुफ़यान के ख़ानदान की सलतनत ख़त्म हो गई और उसकी जगह मरवान और उसकी औलाद ने राज की बागडोर संभाली। मगर उन्हें नये इन्क़ेलाब का सामना करना पड़ा और सभी आन्दोलनों को लेकर उठने वालों का नारा था ''हुसैन[अ०] के ख़ून का बदला''। इसलिए मुख़्तार का इन्क़ेलाब, इब्राहीम का उठना, तव्वाबीन और सुलेमान बिन सर्द ख़ुज़ाओ, ज़ैद और यह्या वग़ैरा के उठने ने उमवी राज को हिला दिया यहाँ तक कि सौ साल से भी कम मुद्दत में बनी उमैय्या का ख़ात्मा हो गया और उसकी जगह हुसैन[अ०] और हुसैन[अ०] के ख़ून का बदला चाहने वालों के नाम पर अब्बासी राज में आ गए।

इमाम हुसैन[अ०] क्यों शहीद हुए?

इसलिए कि समाज को जगाएं। इमाम हुसैन[अ०] अपनी सच्चाई के ज़रिये और अपना ख़ून बहाकर इस्लामी समाज को बेहोशी की नींद से चौंकाना चाहते थे, कर्बला के वाक़ेओं से पहले लोगों की बेपरवाही इस हद तक पहुँच चुकी थी कि ख़लीफ़ा ने जुमे की नमाज़ बुध के दिन पढ़वाई और सभी ने पढ़ी, मगर कर्बला के बाद ये सभी फिराव और चालें सौ साल से भी कम मुद्दत में ख़त्म हो गईं।

कर्बला में ख़ून का एक धमाका हुआ और इस बड़े धमाके की लहरों ने सारे इस्लामी राज में फैलकर एक ज़लज़ला पैदा कर दिया। एक लम्बे ज़माने तक यज़ीद को रुसवा किया। यही नहीं बल्कि इस बड़े धमाके से तारीख़ के पथरीले सीने से एक ऐसा सोता फूटा जिसके बहाव से इस्लाम हमेशा-हमेशा जीवन लेता रहेगा।

इतिहास में कर्बला का अमर रहना हाबील और क़ाबील की ताक़तों में टकराव

मूसओ फिरऔनो शब्बीरो यज़ीद
ईं दो क़ुव्वत अज़ हयात आमद पदीद

('इक़बाल')

इस्लाम में जिसका विश्वास तौहीद (ख़ुदा को एक

मानना) और क़यामत पर है, दुनिया पैदा करने वाले सिरजनहार की समझ, इरादे और मक़सद का भी मानने वाला है और ''हिस्ट्री के एके'' को भी मानता है। हिस्ट्री पिछले वाक़ेओं का ऐसा जमाव है जो इत्तेफ़ाक़ से पैदा होकर ख़त्म न होने वाला बल्कि लगातार चलने वाली 'होनी' बातों का एक सिलसिला है जैसे सफ़र करने वाला कोई कारवाँ जो इन्सान के जीवन शुरु होने के साथ चालू हुआ और बिना रुके एक ओर लगातार चलता चला जा रहा है। इस आज और कल के सोते में हर ''बीता हुआ कल'' एक ''आज'' को जन्म देता है। हर 'आज' हर वर्तमान, बीते कल 'भूत' से जन्म लेता है। और हर बीता कल 'आज' की कमाई का अमानतदार होता है। धरती पर इतिहास इन्सान के साथ चलता है। जो बातें इतिहास पर राज करती हैं उन्हें ''सुनने इलाही'' (भगवान-चलन) कहते हैं। इन ''सुनने इलाही'' में एक ये भी है कि ''सत्य'' हमेशा ''असत्य'' से टकराता रहता है, ''ज्ञान'', ''अनजानपन'' से लड़ता रहता है। ईमान (धर्म) भी कुफ़्र (अधर्म) से जंग करता रहता है और बहकाव से ख़ुदाई बुनियादों की भिड़न्त, चलती रहती है। ये जंग हज़रत आदम^{अ०} से शुरु होती है और इसके बाद से इतिहास, हाबील और क़ाबील की खींचातानी की धुरी पर घूमता रहता है। हर दौर, हर ज़माने और हर जगह में सत्य नबियों और मोमिनों की अगुवाई में अधर्म के डॉनों से भिड़ता रहता है। इब्राहीम[अ०] और नमरूद, मूसा[अ०] और फ़िरऔन, और मुहम्मद[स०] और अबूलहब, अबूजहल, अबूसुफ़यान। ये सभी मरहले हमेशा चलते रहते है, ये जंग एक बीती जंग नहीं बल्कि हिस्ट्री का एक सिलसिला है जो हर ज़माने में दोहराया जाता है।

''हक़'' और ''बातिल'' सत्य और असत्य की ये जंग हिस्ट्री के फ़लसफ़े का रुख़ इस्लाम की ओर मोड़ती है। कर्बला इस जंग की सबसे बड़ी चमक और सबसे उजागर मैदान है, जिसने ''सत्य'' और ''असत्य'' की जंग के ऐसे-ऐसे पहलू सामने किये हैं कि इसके बाद से होने वाले हर ''सत्य'' और ''असत्य'' के टकराव को कर्बला की कड़ी कहना चाहिए। कर्बला एक ऐसी धारा है जो इन्सानी इतिहास की शुरुआत के साथ चालू हुई है और जो 'आज' को अपनी लपेट में लेती हुई 'आने वाले कल' की तरफ़ बहती चली जाती है।

हुसैन[अ०], इतिहास के धारे के वारिस

''ज़ियारत वारिसा'' असल में इतिहास के फ़लसफ़े के बारे में शिया सोच का एलान है। ये ज़ियारत पुकार-पुकार कर कहती है कि हुसैन[अ०] एक आदमी नहीं बल्कि पिछली हिस्ट्री के वारिस हैं। हुसैन[अ०] उस अलम के वारिस हैं जो इन्सानी हिस्ट्री में बातिल, ज़ुल्म, ज़ोर, भटकाव, और जाहिलियत के मूल्यों (Values) के ख़िलाफ़ होने वाली जंग में हाथों हाथ होता हुआ हुसैन[अ०] तक पहुँचा है। वह आदम[अ०] के वारिस, नूह[अ०] के वारिस, इब्राहीम[अ०] के वारिस, मूसा[अ०] के वारिस, ईसा[अ०] के वारिस, हज़रत मुहम्मद[स०] के वारिस, अली[अ०] के वारिस और हसन[अ०] के वारिस हैं। अगर क़ुरआन को पढ़कर देखा जाए कि हाबील, नूह, इब्राहीम और मूसा किन मूल्यों (Values) के परचमदार थे और किन ताक़तों और मूल्यों के ख़िलाफ़ लगे हुए थे, तो मालूम होगा कि हर ज़माने में छोटी सही, मगर एक कर्बला ही का वजूद रहा। ज़माने के आगे बढ़ते हुए क़दमों के साथ चलते हुए जब हम क़ुम के बड़े मुज़ाहरे और 17-शहरयूर की कामयाबियों और ख़ूनीं शहर और अबादान के मनज़रों तक पहुँचते हैं तो हमें महसूस होता है कि ''कल'' की कर्बला खिंच कर ''आज'' के हालात में ढल गयी है और हम यह मान जाते हैं कि कर्बला कभी ख़त्म नहीं हो सकती और कर्बला हर दौर में दोहरायी जाती रहेगी।

देखने में इब्राहीम[अ०], मूसा[अ०] और हुसैन[अ०] के बीच सदियों की दूरी है, फिर भी हुसैन[अ०] सीधे आदम[अ०], इब्राहीम[अ०], मूसा[अ०] और ईसा[अ०] के वारिस हैं, और नमरूद और फिरऔन सिर्फ़ अपने बल का इस्तेमाल करने वाले हैं जो उन इन्सानों को जिन्हें सिर्फ़ एक अकेले ख़ुदा के आगे झुकना और उसकी इबादत (भक्ति) करना चाहिए, अपने आगे झुकाना चाहते हैं और उनसे अपनी पूजा करवाना चाहते हैं। मूसा[अ०] इसी उसूल के ख़िलाफ़ खड़े हुए थे और फिरऔन से टकराए थे ताकि इन्सानों को अधर्म (और समय के रावण) की पूजा से

नजात दिलाएं। इसलिए मूसा[अ०] ने दरबार में फिरऔन से माँग कीः ''खुदा के बन्दों (दासों) को मुझे वापस कर दे, मैं तेरी तरफ़ से भेजा हुआ खुदा का अमीन हूँ। (दुख़ान, आयत-18) ''तूने बनी इस्राईल को दास बना लिया है।'' (शोअ़रा, आयत-22) हुसैन[अ०] भी ज़ुल्म और सितम, ताक़त, बल और राज के ख़िलाफ़ खड़े हुए और अकेले एक बड़े राज से टकरा गए जैसे हुसैन[अ०] ये कह रहे हों कि अगर तुम्हारे पास दीन नहीं है तो कम से कम दुनिया में तो आज़ाद रहो।

आज भी इन्सान की मुख़ालिफ़ अधर्मी ताक़तें, पूरब और पच्छिम का साम्राज की शक्ल में, रीगन, बिरेज़नीफ़ और सद्दाम के रूप में कमज़ोर समाजों को, जो यज़ीद के ज़माने के मुसलमानों और बनी इस्राईल की तरह हैं, अपने शिकन्जे में जकड़े हुए हैं और हुसैनी ताक़तें ज़माने के यज़ीदों से टकरा रही हैं और हुसैन[अ०] के पीछे में माएं अपने कमसिन और जवान यानी अली अकबर और अली असग़र के ग़ुलामों को इस्लाम पर क़ुर्बान कर रही हैं। आप ग़ौर करें कि आबादान और ख़ूनी शहर में धर्म और बातिल के बीच छिड़े मोर्चे पर क्या हो रहा है?

मूसा[अ०] के जवाब में फ़िरऔन का कर्म क्या था? माद्दी ताक़तों के ज़रिये हक़ की आवाज़ को दबाने की कोशिश करना। फिरऔन ने कहाः ''छोड़ दो, मैं मूसा को क़त्ल कर दूँ। मगर मैं देख रहा हूँ कि क्या वह तुम लोगों को नये विचार और नया अक़ीदा देता है या ज़मीन पर बिगाड़ फैलाता है'' इमाम हुसैन[अ०] भी इसी जवाबी कर्म से दोचार थे।

किताब 'नासिखुत्तवारीख़' में हैः- यज़ीद ने मदीना के गवर्नर वलीद को लिखाः ''अगर हुसैन[अ०] सुपुत्र अली[अ०] बैअत न करें (अपना हाथ न दें) तो इस ख़त के जवाब में उनका सर मेरे पास भेज दो'' जिस वक़्त हुसैन[अ०], यज़ीद के गर्वनर, वलीद के सामने थे, मरवान ने क्या कहा? उसने कहाः ''हुसैन[अ०] पर नज़र रखो यहाँ तक कि या तो वह बैअत करें या उनका सर काट दो'' जवाब में इमाम[अ०] ने कहा' ऐ नापाक और गन्दी औलाद! तू मेरी मौत का हुक्म देता है? ख़ुदा की क़सम तूने झूट कहा और इसके लिए तुझे सज़ा भुगतना पड़ेगी।''

यज़ीदों, फिरऔनों, रीगनों, आर्यमेहरों और सद्दामों का यही एक सा तरीक़ा है कि हथियारों के ज़ोर पर सत्य के तरफ़दारों को ख़ून में डुबो देते हैं जिससे वे मौजूदा हालात को अपने तरफ न कर सकें और उसे वे फ़साद, बवाल और बग़ावत का नाम देते हैं। इसकी बिल्कुल खुली तस्वीर कर्बला में सामने लायी गई थी और हुसैन[अ०] ने ख़ून के ताक़तवर तूफ़ान से दुश्मन के हथियार और धन दौलत, राज हटधर्मी की इस हिस्टोरिकल लॉजिक को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया। इस हुसैनी महासंग्राम को गुज़रे चौदह सौ साल हो गए, मगर आज भी जब कभी कहीं सच असत्य से टकराता है तो बातिल उसी उसूल पर काम करता है और हक़ की हिफ़ाज़त करने वाले भी जंग के मोर्चे पर कर्बला की बहादुरी दोहराते हैं और ख़ून के बलबूते तलवार पर जीत पाकर हुसैन[अ०] के पीछे चलते हैं और इस तरह इतिहास के धारे पर कर्बला का सिलसिला चलता रहता है।

फ़िरऔन के बारे में क़ुरआन कहता हैः ''फिरऔन के ख़ास जुर्मों में से एक ये भी था कि वह इन्सानों को नस्ल, जाति के आधार पर बांटता था और गरोहों को दबाए रखता था।'' (क़सस, आयत-4)

61[हि०] में इमाम हुसैन[अ०] का पाला इसी तरह से पड़ा था, जाहिलियत की बातें जाति-क़बीले के जुड़े द्वेष बैर दोबारा सर उठा रहे थे, इस्लामी समाज के कमज़ोर लोग ज़ुल्म और सितम का शिकार हो रहे थे। ऐसे में इमाम हुसैन[अ०] भी हज़रत मूसा[अ०] की तरह इस सूरतेहाल को ख़त्म करने के लिए उठ खड़े हुए।

ये सच्चाई है कि इमाम हुसैन[अ०], आदम[अ०], नूह[अ०], इब्राहीम[अ०] और मूसा[अ०] के वारिस थे, लेकिन क्या आज अमेरीका, रूस और उनका नमक खाने वालों की साम्राजीपन का मुजरिमों वाला तरीक़ा कुछ अलग है? ऐसे मौक़े पर कर्बला के उजालों के वारिस और हुसैन[अ०] की पैरवी करने वाले आज भी खुमैनी या उन जैसे लोग बातिल ताक़तों से टकरा रहे हैं। ये है आज की तारीख़ पर कर्बला की छाप।

जवाब में हुसैन[अ०], मूसा[अ०], इब्राहीम[अ०] और उनके मानने वालों का रवैया क्या है। उनका रवैया एक ही लाजिक से निकल रहा है यानी ''ला'' और ''इल्ला'', ''हाँ'' और ''नहीं''। हर ''ताक़त'', ''सितम'', ''असत्य'' और ''शैतान'' के मुक़ाबले पर ''नहीं'' और ''ख़ुदा'', ''सच'', ''इन्साफ़'' और ''सच्चाई'' के सामने ''हाँ''।

इन्हीं सत्य का झण्डा ऊँचा करने वालों की ''नहीं'' हिस्ट्री की जान ज़िन्दगी और ताक़त का कारण रही। इसी लॉजिकल ''नहीं'' और ''हाँ'' ने जीवन के धारे को सीध दी। उन के हाथ में ''नहीं'' वह तलवार थी जिसने ज़िन्दगी के सभी समाजी, सियासी और मन की बुराईयों को जड़ से ख़त्म कर दिया। पैग़म्बर वाली ''हाँ'' हमेशा एक 'नहीं' के साथ होती है।

हुसैन[अ०] का इनकार और ''नहीं'' मूसा[अ०] और इब्राहीम[अ०] की ''नहीं'' है। ये 'नहीं' तौहीद की गहराईयों से फूटती है। ये ''हाँ'' नहीं बन सकती इसलिए कि अगर ये ''नहीं'', ''हाँ'' बन जाए तो जितनी चीज़ें बुराइयों की नही करती हैं, वह सब बुराइयों को मान जाएंगी। ''नहीं'' सभी झूठी नक़ाबों की धज्जियाँ करके असल सच्चाई को सामने लाती है। इन्सान और संसार की बाढ़ और उठान बिना इस ''नहीं'' के हो नही सकती।

आदम[अ०] के वारिस हुसैन[अ०] से जब इब्ने ज़ुबैर ने पूछा कि अगर यज़ीद बैअत का न्योता दे तो आप क्या करेंगे। आपने कहाः मैं यज़ीद की बैअत नहीं करूँगा। आपने मुहम्मद बिन हनफ़िया को पुकारते हुए एलान कियाः ''ख़ुदा की क़सम, अगरे मेरे लिए सारी दुनिया में कहीं भी अमन और पनाह की जगह न हो तब भी मैं मुआविया के बेटे के हाथ पर हरगिज़-हरगिज़ बैअत न करूँगा।''

हुसैन[अ०] के इस इनकार और इस 'नहीं' ने हिस्ट्री में हमेशा के लिए एक गूँज पैदा कर दी है। ''नहीं'' यानी असत्य, अधर्म बातिल, शैतान और टेढ़ेपन के विरोध गुहार, अनशन और हर उस चीज़ हर उस ताक़त के मुक़ाबले में जो सच्चाई और ख़ुदा से टकराती है, इसके बाद ''इक़रार'' यानी ''हाँ'' सिर्फ़ ख़ुदा के और ख़ुदा की मर्ज़ी के आगे।

''हाँ'' और ''नहीं'' यानी ''मानने'' और ''इनकार'' की यही लॉजिक है जो ज़िन्दगी को इलेक्ट्रान और न्युट्रान के शुरुआती मरहलों से लेकर रूहानी और मान्सिक (Psychological) मरहलों की ऊँचाइयों तक इन्सान को रास्ता दिखाती है और इन्सानी ज़िन्दगी के बाक़ी रहने की ज़मानत है।

कर्बला के चौदह सौ बरस के बाद आज भी हुसैनी नस्ल का एक नायब इमाम और लीडर ज़माने के यज़ीदों के मुक़ाबले में इसी ''नहीं'' को दोहरा रहा है। इस ''नहीं'' में ऐसा यक़ीन निश्चय है कि जो बड़ी-बड़ी दबंग हुकूमतों का तख़्ता पलट सकती है। हुसैन[अ०] के पीछे चलने वाला समाज एक सीसा पिलाई हुई दीवार ''क-अन्नहुम बुन्यानुम मरसूस'' है जो पूरबी और पच्छिमी ताक़तों के मुक़ाबले पर खड़ी ''नहीं'' का जाप कर रहा है और हुसैनी पीढ़ी का अपने चलने से बंधे रहने का ये हाल है कि कर्बला फिर अपने आपको दोहरा रही है।

क़ुरआन बताता है कि फ़िरऔन की तरह के लोग हक़ का झण्डा उठाने वालों की तगड़ी पॉलीसियों और उनकी कामयाबियों के ख़िलाफ़ तरह-तरह के लान्छन, झूट और इल्ज़ाम लगाते हैं। मूसा[अ०] को फिरऔन ने कभी 'झूठा जादूगर' कहा, कभी दीवाना और कभी फ़साद फैलाने वाला कहा। यज़ीद भी मूसा[अ०] के वारिस हुसैन[अ०] को बाग़ी, विद्रोही, फ़साद फैलाने वाला और बवाली मशहूर करता है और चौदह सौ बरस बाद आज भी सत्य का झन्डा उठाने वालों को जिन झूटे आरोपों और इल्ज़ामों का सामना है इस से ज़ाहिर होता है कि हक़ और बातिल, सत्य और असत्य की जंग में बातिल के जंगी चालें और तरीक़े वही पिछले जैसे हैं और ज़माने के बदलने से उनके ढर्रे नहीं बदले।

हालात कितने मिलते जुलते हैं। ये फिरऔन का राज का ज़माना है। उसकी हुकूमत में हर ज़ुल्म, ज़्यादती 'अहम्' और ख़ुदग़रज़ी है। उसने लोगों की आज़ादी छीन रखी है और सच की आवाज़ उठाने वाले मूसा[अ०] को मिस्र छोड़ना पड़ाः-

"और जब वो मदियन की तरफ चले तो कहाः उम्मीद है कि मेरा परवरदिगार मुझे सीधे रास्ते की तरफ ले जायगा।" (क़सस, आयत-22)

और अब यज़ीदी राज है, एक बार फिर मुसलमानों के देश में ज़ुल्म और सितम, लूटमार का दौर-दौरा है। यज़ीद हुसैन[अ०] से बैअत चाहता है और हुसैन अटूट फैसल वाले अन्दाज़ में एक बार "नहीं" कहते हैं। यज़ीद इमाम के क़त्ल का हुक्म जारी करता है और इमाम बेबसी में अपनी औरतों और मासूम बच्चों के साथ मदीने को छोड़कर मक्का आ जाते हैं।

यज़ीद ने क्या किया?

नबियों के आन्दोलन एक मक़सद टेढ़ेपन और बहकाव से दबाव से बचाव था। ज़माने में जब तरह-तरह के बिगाड़ के नतीजे में इन्सानियत का क़ाफ़ला सीधे रास्ते से भटक जाता है, तो ऐसे में ख़ुदा के भेजे हुए रसूलों में से एक जेहाद (संग्राम) छेड़ देता है ताकि अल्लाह के धर्म के नूरानी और साफ़-सुथरे चेहरे पर थोपी हुई बिगाड़ और भटकाव के धब्बो को दूर कर दे।

जिस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] ने कर्बला की तहरीक (Movement) शुरु की, उस वक़्त ख़ुदा का आख़री सबसे पूरा दीन इस्लाम भटकाव के दरवाज़े पर खड़ा था। ख़िलाफ़त की गद्दी पर यज़ीद का क़ब्ज़ा था, वह "ख़लीफ़ा" के नाम से मुसलमानों का धर्म नेता था और उसका हर काम सारे मुसलमानों के लिए आदर्श और नमूना समझा जाता था और ये ख़तरा सर पर मंडला रहा था कि कहीं कभी सही इस्लाम की सूरत बदल न जाए। ऐसे में हुसैन[अ०] चाहते थे कि अपना ख़ून, अली अकबर, अली असग़र, क़ासिम और अब्बास का ख़ून और ज़ैनब और उम्मे कुल्सूम की चादर देकर, गरज़ किसी भी क़ीमत पर "ख़िलाफ़त" के नाम पर मौजूदा हुकूमत को इस तरह धिक्कार दिया जाए कि अगर वह मिट न भी सके तो कम से कम ख़लीफ़ा को मुसलमानों का "दीनी ख़लीफ़ा" यानी धर्म का करता धरता किसी तरह न माना जाए और ख़लीफ़ा की शख़सियत शिक्षाओं का हिस्सा न बनने पाये। हुसैन[अ०] को अपने इस मक़सद में ज़बरदस्त कामयाबी हुई। यज़ीद से पहले जो ख़लीफ़ा थे यहाँ तक कि अमीर मुआविया तक ऐसे ही मिसाली नमूने समझे जाते थे, मगर यज़ीद और उसके बाद के ख़लीफ़ा के चलन इस्लामी शिक्षाओं से इतने अलग नज़र आने लगे कि मुसलमानों का कोई फ़िरक़ा भी ऐसा नहीं जो मान की निगाह से देखे। कर्बला संग्राम का यह एक महान कारनामा है। हुसैन[अ०] ने 'साम्राजी इस्लाम' के हाथ पर बैअत न की ताकि "मुहम्मदी इस्लामे" बचा रहे और मज़बूत रहे।

कर्बला के वरदान और बरकत से इस मैदान में हुसैनी काल अमर बन गया और सदा के लिए। जिस ज़माने में भी ये एहसास हुआ है कि असल इस्लाम भुलाया जा रहा है, इस्लामी उलमा इस्लाम बचाने के लिए अपनी जान हथेली पर रख कर खुले मैदान में आ गए हैं। अभी भी मलिक ख़ालिद जैसों के इस्लाम के ज़रिये से बराबर ये ख़तरा पैदा हो रहा है कि असल इस्लाम भुला दिया जाएगा। मलिक ख़ालिद जैसों के इस्लाम को इस्लाम के नाम से पेश किया गया, मगर इमाम ख़ुमैनी की अगुवाई में ईरान के इन्क़ेलाब ने अचानक इस तिलस्म को तोड़ दिया और दुनिया को दिखाया कि अमरीकी इस्लाम उस मुहम्मदी इस्लाम और असल इस्लाम से अलग है जिसके पहरेदार हुसैन[अ०] थे। 'ज़ोर', 'धन' और धोखा इस्लाम नहीं है, बल्कि इस्लाम वह है जो कमज़ोरों की मदद करे और पूरब और पच्छिम की ताक़तों से मुक़ाबला करने वाला हो, उनकी करने वाला न हो।

सच है, कर्बला का असर अभी बाक़ी है।

अपने भाई मुहम्मद बिन हनफ़िया के नाम इमाम हुसैन[अ०] की वसिय्यत इमाम[अ०] के मक़सद की एक ज़िन्दा और बोलती हुई सनद है जिसमें उन्होंने अपने असल मक़सद और पूरी पॉलीसी को खुलकर बताया है।

"मैं हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] ये वसियत अपने भाई मुहम्मद बिन हनफ़िया के नाम कर रहा हूँ। ख़ुदा एक अकेला है और यह कि मुहम्मद[स०] अल्लाहके बन्दे (दास) और उसी के भेजे, सत्य की ओर से सत्य पर आए रसूल हैं। और मैं मानता हूँ कि जन्नत और जहन्नम

(बक़िया....... पेज 11 पर)

इदारा

मुख्य समाचार

यहूदी बस्तियाँ बसाने पर रोक लगाना ज़रूरी

मिस्र के राष्ट्रपति हसनी मुबारक ने इस्राईल को चेतावनी दी है कि अगर उसने पूर्वी यरोशलम समेत मक़बूज़ा इलाक़े पर बस्तियाँ आबाद करने का काम नहीं रोका तो उसे मुस्लिम दुनिया के गुस्से का सामना करना पड़ सकता है।

इस्राईल के राष्ट्रपति शमऊन परीज़ के साथ एक मीटिंग के बाद मुबारक ने कहा कि पूरी मुस्लिम दुनिया में यरोशलम का भविष्य एक अहम मौजू है। याद रहे कि फिलस्तीन और इस्राईल दोनों ही यरोशलम को अपनी राजधानी बताते हैं। उन्होंने कहा कि 'पूर्वी यरोशलम के मसले का जब तक कोई हल नहीं निकाला जायेगा, इस्राईल को पूरी मुस्लिम दुनिया के गुस्से का सामना करना पड़ेगा'। उन्होंने इस्राईली राष्ट्रपति के साथ जुलाई में होने वाली मीटिंग में ठोस नतीजे न निकलने पर चिंता जतायी। हसनी मुबारक ने कहा कि 'हम अमन की संभावना को गंवाना नहीं चाहते हैं।' उन्होंने कहा कि सबसे पहले ये देखने की ज़रूरत है कि इस्राईल मक़बूज़ा इलाक़े में बस्तियाँ बसाने की हलचल पर कैसे रोक लगाता है।'

हसनी मुबारक ने कहा 'हम बातचीत के सभी पहलुओं पर वहीं से बात शुरु करेंगे जहाँ उन्हें छोड़ा गया था ताकि फिलिस्तीनियों की तकलीफ़ें ख़त्म करने वाले किसी अमन मुआहदे तक पहुँचा जा सके। इससे अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के मुआहदों की तरह 1967 के सरहदी हालात वाले एक फिलिस्तीन मुल्क की स्थापना हो सकेगी।' उन्होंने कहा 'पश्चिमी एशिया में अमन का अमल एक अहम दौर से गुज़र रहा है। इसमें ग़ैर मुस्तक़िल हल या ग़ैर मुस्तक़िल फिलिस्तीनी मुल्क के लिए ग़ैर मुस्तक़िल सरहदों की कोई गुन्जाइश नहीं रहनी चाहिए।' मुबारक ने कहा कि 'हमें मुस्तक़िल मुआहदे पर पहुँचने को अहमियत देने की ज़रूरत है जिस पर तै किये हुए वक़्त में क़दम उठाया जा सके।'

ईरान की हवाई ट्रेनिंग शुरु

ईरान ने 5 दिवसीय जंगी ट्रेनिंग शुरु कर दी है जिसका मक़सद जौहरी प्लान्ट को बचाये रखने में ताक़त का तजुरबा करना है।

ईरान के डिफ़ेन्स के ज़िम्मेदार ने कहा कि इन ट्रेनिंगों का मक़सद हवाई हमले और हवाई निगरानी के ख़तरे से निपटना है। तेहरान में एक बड़े अफ़सर ने ख़बरदार किया कि ईरान के न्युकिलियाई ज़ख़ीरे पर इस्राईल की तरफ से हवाई हमले की सूरत में उसका भरपूर जवाब दिया जायगा और तलअबीब को मीज़ाईलों से निशाना बनाया जायगा। ईरान पर उसके न्युकिलियाई प्रोग्राम के हवाले से सख़्त आलमी दबाव डाला जा रहा है और नाक़िदीन का ख़याल है कि ईरान एटमी हथियार हासिल करने की कोशिश कर रहा है। अमरीका और इस्राईल की तरफ से ईरान को एटमी हथियारों के हासिल करने से अलग रखने के लिए हवाई हमले के इम्कान को रद्द नहीं किया गया है। ईरान का कहना है कि उसका एटमी प्रोग्राम अमन के लिए है।

ईरान के एयर डिफेन्स के ज़िम्मेदार बिग्रेडियर अहमद मेगहानी ने सरकारी टी०वी० को बताया कि इन जंगी ट्रेनिंगों में 6 लाख मीटर के इलाक़े का निशाना लिया जायगा और इसका मक़सद ईरान की डिफेन्स ख़ूबियों को दिखाना है। उन्होंने कहा कि ईरान के एटमी प्लान्ट पर मुमकिन हवाई हमले के तहत उन पर लाज़िम होता है कि वह इन हस्सास प्लान्ट की हिफ़ाज़त के लिए तैयार रहें।

इसी बीच राष्ट्रपति महमूद अहमदी नेजाद के एक सलाहकार मुजतबा जुन्नूर ने कहा कि इस्राईल की तरफ से हमले की सूरत में भरपूर जवाब दिया जायगा। उन्होंने कहा कि अगर दुश्मन ने हमला किया तो हमारे मीज़ाईल तलअबीब पर गिरेंगे।

ईरान के 'पासदाराने इन्क़ेलाब' के हवाई यूनिट के ज़िम्मेदार ने कहा कि इस्राईली जहाज़ों ने अगर ईरान पर हमले की कोशिश की तो उन्हें तबाह कर दिया जायगा। अमीर आली हाजी ज़ाद ने कहा कि ईरानी हवाई डिफेन्स निज़ाम इस्राईल के एफ़-16 और एफ़-15 जहाज़ों को तबाह करने की ताक़त रखता है। उन्होंने कहा कि अगर ये जहाज़ हमले के बाद वापस अपने अड्डों पर पहुँचने में कामयाब भी हो गये तो उन अड्डों को ज़मीन से ज़मीन पर मार करने वाले मीज़ाइलों से निशाना बनाया जायगा। ये जंगी ट्रेनिंग एक ऐसे वक़्त में की जा रही है जब सलामती कौंसिल के स्थायी सदस्य ब्रिटेन, चीन, फ्रांस, रूस, अमरीका और इनके अलावा जर्मनी, तेहरान पर दबाव डाल रहे हैं कि वह इस पेशकश पर दोबारा ग़ौर करे जिसके तहत ईरान के कुछ यूरेनियम अफ़ज़ोदगी के लिए मुल्क से बाहर भेजने की तजवीज़ पेश की गयी थी। ये पेशकश संयुक्त राष्ट्र की जौहरी तवानाई से मुताल्लिक़ इदारे के तरफ से ईरान को दी गयी थी और इसके तहत ईरान के 70 प्रतिशत यूरेनियम अफ़ज़ोदगी के लिए रूस या फ्रांस भेजने की तजवीज़ पेश की गयी थी जहाँ उनको ईंधन राड में बदल कर इस्तेमाल के क़ाबिल बनाया जाना था। इस निज़ाम के तहत जौहरी हथियारों की तैयारी के लिए यूरेनियम अफ़ज़ोदगी से रोका जा सकता है लेकिन ईरान ने इस पेशकश को ठुकरा दिया है और इस बारे में यक़ीन दहानी तलब की है।

अमरीका और इस्राईल में ईरान पर हमले की हिम्मत नहीं

हथियार और धमकियाँ अब गुज़री बातें: ईरानी राष्ट्रपति

ईरान के राष्ट्रपति महमूद अहमदी नेजाद ने कहा कि हथियारों को इस्तेमाल करने के लिए हिम्मत चाहिए जो अमरीका और इस्राईल के पास नहीं है। ईरानी राष्ट्रपति ने ब्राज़ील के दौरे में प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि हथियार और धमकियाँ अब गुज़री हुई बातें हो चुकीं। फौजी हमलों का दौर अपनी आख़री हद को पहुँच चुका है और अब बातचीत का वक़्त आ गया है। उन्होंने कहा कि हथियार इस्तेमाल करने का हौसला इस्राईल और अमरीका के पास नहीं है। न्यूज़ कान्फ्रेंस से पहले ईरानी राष्ट्रपति ने ब्राज़ील के राष्ट्रपति लुईज़ाना शेवदासलो से मुलाक़ात की। इस मौक़ पर ब्राज़ील के राष्ट्रपति लुइज़ाना शवदासलो ने कहा कि आलमी बिरादरी ईरान को अलग करने के बजाए उसे मध्य एशिया में अमन की कोशिशों का हिस्सा बनाए जब कि ईरान को एटमी प्रोग्राम के क़ानूनी और सही हल के लिए पश्चिमी क़ौमों से बातचीत करनी चाहिए। ब्राज़ील की राजधानी ब्राज़ीलिया में ईरानी राष्ट्रपति से मुलाक़ात के बाद ब्राज़ील के राष्ट्रपति ने एक इण्टरव्यु में कहा कि आलमी सतह पर ईरान को अकेला करने का कोई औचित्य नहीं बनता बल्कि ज़रूरत इस बात की है कि ईरान के साथ बैठा जाय और उसके साथ मुज़ाकरात के ज़रिये मध्य एशिया के हालात को पटरी पर लाया जाय। उन्होंने ईरान के पुरअम्न न्युकिलियर की हिमायत करते हुए राष्ट्रपति को सुझाव दिया कि वह पश्चिमी ताक़तों के साथ एटमी मामले पर बातचीत जारी रखें।

इस्राईल के हवाई हमले, सात फिलिस्तीनी घायल

इस्राईली विमानों ने ग़ाज़ा पट्टी में फिर हवाई हमले किये जिसमें 7 फिलिस्तीनी शहरी ज़ख़्मी हो गये। हमास ने इस्राईल की तरफ एक राकेट फेंका था जिसके जवाब में इस्राईल ने हवाई हमला कर दिया।

इस्राईल के एक हमले में मध्य ग़ाज़ा के एक कारख़ाने को निशाना बनाया गया। इस्राईल का कहना था कि वहाँ हथियार तैयार किये जाते हैं जबकि फिलिस्तीनियों ने बताया कि ये धात का कारख़ाना था। फिलिस्तीनी मेडिकल स्टाफ और मौजूदा गवाहों का कहना था कि एक और हमला एक क़ाफ़ले पर किया गया। तीसरा हमला मिस्र से क़रीब सरहद पर बनी सुरंगों को निशाना बनाकर किया गया। इस हमले से एक रोज़ पहले हमास ने कहा था कि उसने इस्राईल की तरफ चन्द राकेट भेजे जाने को रोकने के लिए इलाक़े के छोटे मुस्लिम ग्रुपों के साथ एक मुआहेदा कर लिया क्योंकि हाथ से फेंके गये इन मामूली राकेटों के जवाब में इस्राईली हवाई हमले करता है और बेगुनाह मारे जाते हैं। एक साल पहले इस्राईल ने ग़ाज़ा पट्टी में 22 रोज़ तक हवाई और ज़मीनी हमले करके हज़ारों लोगों को मार डाला था और बहुत सी इमारतों को मलबे में बदल दिया था। मरने वालों में ज़्यादातर औरतें और बच्चे थे।

मिस्र इन दिनों इस्राईल और हमास के बीच क़ैदियों के तबादले के मामले में मध्यस्था करने की कोशिश कर रहा है जिसमें फिलिस्तीनियों के पकड़े हुए एक इस्राईली फौजी की रिहायी का मामला भी शामिल है। जो सन् 2006 से फिलिस्तीनियों की क़ैद में है। एक की रिहाई के बदले इस्राईल में बन्द सैकड़ों फिलिस्तीनियों को आज़ाद करने की बात चल रही है।

● देखने में मुसलमान सबसे ग़रीब हैं लेकिन मुसलमान सबसे ज़्यादा अमीर हैं क्योंकि हुसैन[अ०] जैसी शख़सियत उन्हें विरासत में मिली है। (सरदार करतार सिंह)

● इतनी बड़ी कुर्बानियाँ जो हुसैन[अ०] ने पेश की हैं, इन्सानियत को उसके दर्जे से बुलन्द कर दिया है। उनकी याद मनाने और क़ायम करने के क़ाबिल है। (पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त)